श्रीहनुमते नमः

आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यप्रणीत

श्रीवैष्णवमताब्जभास्करः

श्रीमन्तं श्रुतिवेद्यमद्भुतगुणग्रामाग्र्यरत्नाकरं
प्रेयः स्वेक्षणसंसुलज्जितमहीजाताक्षिकोणेक्षितम् ।
भक्ताशेषमनोभिवाञ्छितचतुर्वर्गप्रदं स्वर्द्रुमं
रामं स्मेरमुखांबुजं शुचिमहानीलाश्मकान्तिं भजे ॥१॥

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत किरण

जय श्री राम

संसार महोदधि में निमज्जित होने वाले वेद से बहिर्मुख तथा अनर्थ का कारण काम क्रोधादिक में आग्रहशील दुःखी जन्तुओं को देखकर इन जीवों को संसार सागर से उद्धार करने की इच्छा से भगवान् श्रीरामजी जो कि सकल हेय प्रत्यनीक अनन्त कल्याण गुणों से शोभित हैं । वे स्वयं सर्वावतारी श्रीरामजी श्रीरामानन्दाचार्यजी के रूपसे इस लीलाभूमि में १३५६ विक्रम माघकृष्णसप्तमी को अवतारित हुए । इसके वाद श्रीरामानन्दाचार्यजी जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यजी जो श्रीमठ पञ्चगङ्गाघाट के रूपमें समस्त जगत् का धार्मिक नेतृत्व कर रहे थे से शिक्षा दीक्षा को प्राप्त करके लोक सल्याण के लिये वेद स्मृति, इतिहास पुराणादि रूप शास्त्र सागर के अर्थ को निकाल करके प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यादि ग्रन्थों में प्रकाशित किया । तदनन्तर अल्पमति के साधारण व्यक्ति को भी शास्त्र के अर्थों का यथावत् बोध हो तथान्य अल्पमतिक पण्डितों से दूषित श्रीसम्प्रदाय का कण्टकोद्धार करने के लिये श्रीआचार्यजी ने श्रुति स्मृत्यादिकों के अर्थों का संकलन करके संक्षिप्त रूपसे स्वशिष्य ज.गु. श्रीसुसुरानन्दाचार्यजी को निमित्त बनाकर "**श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर**" नामक ग्रन्थ का निर्माण किया । प्रारीप्सित ग्रन्थ की निर्विघ्न पूर्वक समाप्ति हो इसलिये ग्रन्थ के

आदि में मङ्गल करते हैं । मङ्गल तीन प्रकार का होता है एक तो आशीर्वादात्मक, द्वितीय-नमस्कारात्मक, तृतीय-मङ्गल होता है-वस्तु निर्देशात्मक अर्थात् जिस मङ्गल में ग्रन्थ प्रतिपाद्य वस्तु का ही निर्देश किया जाय वह ऐसा प्राचीनों का कथन है- "आशीर्नमस्क्रिया वस्तु निर्देशो वापि तन्मुखम्" ऐसा शास्त्र वचन है ।

प्रकृत प्रकरण के आरम्भ में आचार्यजी ने जगदुत्पत्ति स्थिति और प्रलय का नियामक दया सागर सर्व दोष रहित अनन्त कल्याण गुणों का सागर तथा सम्पूर्ण चराचर स्थूल सूक्ष्म साधारण जिनका शरीर है, इन सव का अन्तर्यामी सर्वशेषी भगवान् परमेश्वर श्रीसीतानाथ हैं-उनका नमस्कार रूप मङ्गलाचरण किया है, निर्विघ्न पूर्वक ग्रन्थ समाप्त हो इसके लिये, अतः यह नमस्कारात्मक मङ्गलाचरण किया गया है।

प्रश्न-सामान्यतः कारणता का नियामक अन्वयव्यतिरेक होता है-तत्सत्वे तत्सत्ता तत् व्यतिरेके तदभावः । यहाँ अन्वय घटक प्रथम तत् शब्द से कारणत्वेन अभिमत वस्तु का ग्रहण होता है, तथा द्वितीय तत् शब्द से कार्य का ग्रहण होता है। इसी तरह व्यतिरेक में भी प्रथम तत् कारण का बोधक होता है। द्वितीय तत् शब्द कार्य का बोधक होता है।

उदाहरण-जिस तरह दण्ड के अव्यवहित पूर्व में सद्भाव रहने से घटरूप कार्य की उत्पति होती है और दण्ड के अव्यवहित पूर्व में नहीं रहने से घट की उत्पत्ति नहीं होती है तो इसप्रकार अन्वय व्यतिरेक रहने से दण्डादिक कारण में कारणता का निश्चय होता है और रासभ आदि पदार्थों में अन्वय व्यतिरेक के नहीं रहने से रासभादिक में घटादि कार्य के प्रति कारणत्व नहीं होता है । इसी प्रकार प्रकृत में यदि मङ्गल रहने पर ग्रन्थ की समाप्ति हो तथा मङ्गल के नहीं रहने से ग्रन्थ की समाप्ति नहीं हो, तव विघ्नध्वंस अथवा समाप्ति के प्रति मङ्गल का कारणत्व हो सकता है! परन्तु ऐसा तो नहीं होता है क्योंकि कादम्बरी प्रभृति ग्रन्थों में मङ्गल तो है, परन्तु समाप्ति नही हुई तो अन्वय व्यभिचार है तथा बौद्ध की किरणावली में मङ्गल नहीं है तथापि ग्रन्थ की समाप्ति देखने में आती है तो व्यतिरेक व्यभिचार है ? तब मङ्गल में किस तरह कारणता निश्चय करते हैं अर्थात् कारणता का निश्चय नहीं होता है, तब आप किस तरह कहते हैं कि निर्विघ्न पूर्वक ग्रन्थ समाप्ति होने के लिये ग्रन्थ के आदि में मङ्गल किया गया है ।

अब इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि प्रत्यक्ष ज्ञान में अन्वय व्यतिरेक व्यभिचार संशय प्रतिबन्धक होता है, परन्तु अनुमिति द्वारा वस्तु साधन करने में व्यभिचार संशय

संशयरूप पक्षताविधायक सहायक होता है तो अन्वय व्यतिरेक व्यभिचार रहने से भले ही प्रत्यक्ष मङ्गल में समाप्ति कारणता का निश्चय न हो परन्तु अनुमान द्वारा तो मङ्गल में यथोक्त कारणता का निश्चय हो सकता है तथापि-"मङ्गलं सफलं अविगीत शिष्टाचार विषयत्वात् दर्शादिवत्" (मङ्गल सफल है क्योंकि अविगीत अनिन्दित शिष्टाचार का विषय होने से-जिसमें यह हेतु है उसमें यथोक्त साध्य भी है जिस तरह दर्श वगैरह याग में अर्थात् दर्शयाग में अविगीत शिष्टाचार विषयता है तो सफलत्व साध्य भी है। अर्थात् दर्शयाग सफल है, यहां स्वर्गादिक फल है तादृश स्वर्ग फल से दर्शयाग फलवान् कहलाता है।) इस अनुमान से मङ्गल में सफलत्व सिद्ध होता है। अब यहाँ जिज्ञासा होती है कि मङ्गल का क्या फल है क्योंकि यहाँ फल तो कोई श्रुत नहीं है, तो विश्वजित याग की तरह स्वर्ग फल की ही कल्पना करेंगे, अर्थात् मङ्गल करने से स्वर्ग फल मिलेगा ऐसा नहीं कहना क्योंकि एक नियम है कि अगर दृष्ट फल की संभावना रहे तब तक अदृष्ट फल की कल्पना उचित नहीं है प्रकृत में जब ग्रन्थ समाप्ति रूप फल उपस्थित है तब अदृष्ट स्वर्गादि फल अथवा पुत्रकलत्रादिफल कल्पना उचित नहीं है अर्थात् मङ्गल का फल समाप्ति है। जब इसप्रकार मङ्गल सफल हुआ तब सफल मङ्गल का आचरण आवश्यक है इस वात को समझ करके मङ्गल किया है।

इस जगह में अब दूसरा भी प्रश्न होता है कि जिस ईश्वर का नमस्कार किया गया है उस ईश्वर के सद्भाव में क्या प्रणाम है? इसमें प्रत्यक्ष प्रणाम तो कह नहीं सकते हैं क्योंकि प्रत्यक्ष बाह्य आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का है तो बाह्य जो प्रत्यक्ष है वह रूपी द्रव्य का ही ग्रहण करता है उस से इश्वर का प्रत्यक्ष हो नहीं सकता, क्योंकि-"**स पर्यगात् शुक्रमकायमव्रणम्" न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते**" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से इश्वर के शरीरादिक नहीं होने से बाह्य प्रत्यक्ष का विषय नहीं हो सकते हैं। और जीव सुखादिभिन्न होने से मानस प्रत्यक्ष का भी विषय नहीं है। और ईश्वरानुमापक अव्यभिचरित लिङ्ग नहीं होने से अनुमान प्रमाण से ग्राह्य नहीं है। ईश्वर के सदृश अन्य कोई नहीं है इसलिये उपमान प्रमाण गम्य भी ईश्वर नहीं है। एवं शब्द प्रमाण से ईश्वर सिद्धि करने में अन्योन्याश्रय दोष होता है। ईश्वराधीन वेद में प्रामाणिकत्व है, तथा वेदाधीन ईश्वर सिद्धि होगी? यह हुआ पूर्व पक्ष।

इसके उत्तर में कहते हैं कि-यों सर्व साधारण जन प्रत्यक्षादि से ईश्वर को निश्चय नहीं कर पाते तो भी '**जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम्**' '**सत्यं ज्ञान**

मानन्दं ब्रह्म' '**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते**' इत्यादि श्रुति समुदाय से ईश्वर है यह निश्चित होता है। क्योंकि **ब्रह्म सत्वे प्रमाणं तु शास्त्रमेव सुनिश्चितम्। तन्त्वौपनिषदञ्चैतच्छुतिवाक्य प्रमाणतः** इस श्रीबोधायनमतादर्श के प्रामाण्य से सर्वेश्वर श्रीरामजी के-ब्रह्म के सत्त्व में-ब्रह्म है इसमें शास्त्र-वेद श्रीमद्रामायणादि सत्शास्त्र ही प्रमाण हैं। अथवा निम्नप्रकार के अनुमान के द्वारा भी ईश्वर की सिद्धि होती है "**क्षित्यङ्कुरादिकं सकर्तृकं कार्यत्वात् घटादिवत्**" जो पदार्थ जन्य होता है वह अवश्य कर्ता से उत्पन्न होता है जैसे जन्य घटादिक कुलालादि जन्य है, इसी प्रकार प्रकृत पक्ष क्षित्यादिक में कार्यत्व है तो कर्ता असर्वज्ञ अस्मदादिक तो हो नहीं सकते हैं, इसलिये भगवान् श्रीसीतानाथजी सर्वज्ञत्वादि गुण विशिष्ट सर्व शरीरी ही कर्ता सिद्ध होते हैं। इसमें-"**द्यावाभूमीजनयन् देव एकः**" इत्यादि आगम भी ईश्वर सिद्धि में प्रमाण होते हैं। इसप्रकार नमस्कार्य परमेश्वर के सद्भाव सिद्ध होने पर भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी ने ईश्वर को नमस्कारात्मक मङ्गल किया-"**श्रीमन्तं श्रुतिवेद्यम्**" इत्यादि।

मैं श्रीरामानन्दाचार्य भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को स्मरण करता हूँ अर्थात् प्रणाम करता हूँ, भगवान् श्रीरामजी किस प्रकार के हैं? जो सकल वेदों से वेद्य-जानने के योग्य हैं, अर्थात् सकल वेद से प्रतिपाद्य हैं तथा सौशील्य वात्सल्यादि अनन्त कल्याण गुणों के समुद्र हैं सकल दोष रहित हैं। प्रियतम के प्रेम दृष्टि से देखने पर लज्जित श्रीसीताजी से देखे गये। और उपासक पुरुषों का जो धर्मार्थ काम और मोक्षरूप सकलमनोभिलषित पदार्थ उसकी पूर्ति करने में कल्पवृक्ष के सदृश अर्थात् जिस तरह कल्पवृक्ष स्वाश्रित व्यक्ति के मनोभिलषित सकल पदार्थ को पूर्ण करता है, उसी तरह प्रकृत में भी भक्त के सकल मनोरथ पूरक भगवान् हैं। "**नतत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते**" इस श्रुति प्रमाण से भगवान् के सदृश कोई न होने पर भी लोक प्रसिद्धि के कारण कल्पवृक्षोपमा दी गई है।

अत्युत्तम नीलमणि की तरह अति निर्मल कान्ति प्रभा से युक्त-"**तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासासर्वमिदं विभाति**" इत्यादि श्रुतियों से सिद्ध होता है कि भगवान् का श्रीविग्रह अत्यन्त कान्ति युक्त है, यथा-"**नीलतोयदमध्यस्था विद्युल्लेखेव भासुरा**" इत्यादि। तथा ईषत् हास्य युक्त मुख कमल है जिनका एतादृश भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का आश्रय लेता हूँ ॥१॥

ऐश्वर्यं यदपाङ्गसंश्रयमिदं भोग्यं दिगीशैर्जगत्

चित्रं चाखिलमद्भुतं शुभगुणावात्सल्यसीमा च या ।

विद्युत्पुंजसमानकान्तिरमितक्षांतिः सुपद्मेक्षणा

दत्तान्नोलिखसंपदो जनकजा रामप्रिया सानिशम् ॥२॥

सर्व जगत् के कारण तथा सर्वान्तरात्मा सर्वशेषी भगवान् श्रीरामजी का नमस्कार करके जगत् जननी सर्वलोक जनक शक्ति स्वरूपा श्रीजानकीजी विदेह कन्या का नमस्कार द्वितीय श्लोक से करते हैं-"**ऐश्वर्यम्**" इत्यादि । इन्द्र कुवेर यम वरुण प्रभृतिक जो दिग् पाल हैं उनसे भोग करने के लायक स्वर्ग राज्य रूप महा ऐश्वर्य तथा देव मनुष्य से लेकर चौरासी लक्ष्य योनि विशेषों से विचित्र अनेक प्रकारक अत एव माया की तरह अत्याश्चर्य जनक यह परिदृश्यमान स्थूल सूक्ष्म साधारण स्थावर जङ्गमात्मक प्रपञ्च समुदाय जिस श्रीजानकीजी की कृपा के अधीन है तथा जो अनेक शुभ गुण वाली हैं तथा वात्सल्यादि गुणों की सीमा अवधिरूप हैं तथा क्षमा की महोदधि हैं भक्तों के अपराध को अपने हृदय में स्थान न देनेवाली हैं । बिजली के समुदाय की तरह कान्ति-शोभावाली तथा कमल के समान नेत्र युक्त हैं ऐसी श्रीरामजी की अतिप्रिया तथा इस श्रीसम्प्रदाय की प्रवर्तिका हैं ऐसी श्रीसीताजी मुझको मुक्ति आदि समस्त सम्पत्ति दें, अर्थात् एतादृश श्रीसीतादेवीजी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥

प्रत्यूहव्यूहभङ्गं विदधदुरूबलश्शक्तिमान् सर्वकारी

भूरिः श्रेयः प्रतापो मुनिवरनिकरैः स्तूमानोविमानः ।

रक्षोदैत्यादिनाशी क्षुभितजलनिधिर्लोकजिल्लोकमान्यो

धन्यो नो मङ्गलौघं सपदि सुकुरुतादृामशस्त्रास्त्रसङ्घः ॥३॥

जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादन कारण तथा पदार्थ मात्र का अन्तरात्मा सर्वशेषी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को नमस्कार करके, तदनन्तर श्रीसम्प्रदाय की प्रवर्तिका श्रीभगवती श्रीसीताजी को नमस्कार किया । तदन्तर सर्वेश्वर श्रीरामजी के अति प्रिय तथा स्मरण करने मात्र से सर्वदा कैङ्कर्य में संलग्न जो भगवान् का शस्त्र तथा अस्त्रों का समुदाय है उनका आचार्य श्री नमस्कार करते हुए कहते हैं-"**प्रत्यूहव्यूहभङ्गम्**" इत्यादि । भगवान् श्रीरामजी का जो शस्त्र तथा अस्त्रों का समुदाय है इसमें मन्त्र के

बिना जो चलाया जाय उसको शस्त्र कहते हैं-यथा बाण खड्गादिक, एवं मन्त्र पूर्वक जिसका प्रयोग किया जाय उसको कहते हैं अस्त्र, यथा आग्नेयास्त्र, ब्रह्मास्त्र इत्यादि। यथा-**स दर्भसंस्तराद्गृह्य ब्राह्मेणास्त्रेणयोजयत् । सतं प्रदिप्त चिक्षेप दर्भं तद् वायसं प्रति । स दीप्त इव कालाग्निर्जज्वालाभिमुखः स्वगम् ।** इत्यादि स्थल में अस्त्र प्रयोग का वर्णन 'कया है एतादृश भगवान् का सस्त्रास्त्र है वह हम लोगों के मङ्गल को शीघ्रता पूवक सम्पादन करे, क्या करता हुआ श्रीरामजी का शस्त्रास्त्र मङ्गल करे, इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-**प्रत्यूहव्यूहभङ्गम्** प्रव्यूह का अर्थ होता है विघ्न तो विघ्न का जो समुदाय है, उनको विनाश करता हुआ । वह श्रीराम शस्त्रास्त्र सङ्घ कैसा है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में "**ऊरुबलः**" इत्यादि विशेषण कहते हैं जिस शस्त्रास्त्र सङ्घ का बल महान् बहुत बडा है बल शब्द का अर्थ है वेग अर्थात् वह शस्त्रास्त्र सङ्घ अत्यन्त वेगशील है तथा शक्तिमान् है अर्थात् अत्यधिक विलक्षण शक्ति है जिसका, एतादृश शक्तिमान् वह शस्त्रास्त्र सङ्घ है । एतादृश विलक्षण शक्ति से इन्द्रसुत जयन्त निगृहीत होकर के तीनों लोकों में पर्यटन किया । तथा रक्षक को नहीं प्राप्त करके भगवान् श्रीरामजी की शरण में ही पुनः आया, तब करुणा निधान श्रीरामजी ने बध योग्य था तो भी, उसके अपराध को क्षमा करके एक आँख को फोडकर छोड़ दिया । उस दिन से काक को एक ही आँख होती है । यह सव प्रभाव उस अस्त्र सङ्घ का है।

पुनः श्रीरामजी का वह शस्त्र कैसा है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं- "**सर्वकारी**" सर्वकार्य को करनेवाले हैं शस्त्र समुदाय । अस्मदादि पुरुषों को मन से भी आलोचन करने के अयोग्य तर्क विषय जो सात ताल वृक्षों का छेदन पहाड को तोड देना रसातल का शोषण भेदनादिक आदि असाध्य कार्य करनेवाला है श्रीरामजी का शस्त्र सङ्घ ।

"**भूरिश्रेयः प्रतापी**" अति श्रेष्ठ प्रतापशाली "**मुनिवरनिकरैस्तूयमानः**" मननशील जो ऋषि लोग हैं उनके समुदाय से सर्वदा स्तूयमान हैं । "**विमानः**" अनेक दुष्कर कार्य का सम्पादन करने पर भी स्वयं सर्वथा अभिमान रहित हैं अर्थात् रावण प्रभृति महाबली व्यक्तियों का विनाश करनेवाले अथवा विमान पद घटक "**वि**" का अर्थ होता है, गरुड पक्षिराज उस गरुड का जो मान अर्थात् वेग तादृश वेग को भी तिरस्कृत करनेवाला है वेग जिसका, एतादृश श्रीरामजी का शस्त्र समुदाय है । "**रक्षो**

दैत्यादिनाशी" राक्षस खर कबन्धादिक दैत्य हिरण्याक्ष हिरण्यकश्यप प्रभृति तथा आदि पद ग्राह्य वाली प्रभृति उन्मार्ग गामी अनेक दुर्जन व्यक्तियों का विनाश करने का स्वभाव है तथा **क्षुभित जलनिधिः** अगाध जलराशि रूपसमुद्र भी जिससे अर्थात् जिस श्रीरामजी के शस्त्र से आकुल व्याकुल करदिये गये, जड जलराशि अगाध समुद्र को भी क्षुब्ध करनेवाला भगवान् का सास्त्रास्त्र सङ्घ है। "**लोकजित्**" लोक अर्थात् दुष्ट लोक में विप्लव कारी व्यक्तियों को परास्त करनेवाला अर्थात् जीतनेवाला और भगवान् का जो शास्त्रास्त्र सङ्घ है वह लोक मान्य अर्थात् त्रिभुवन विवर में रहनेवाले जो लोग हैं उनके द्वारा यह शस्त्र सङ्घ सम्मान्य है। जब रावणादिक विप्लवकारी व्यक्तियों से त्रिभुवन में अशान्ति दुराचारादिक चरम सीमा को प्राप्तकर जाता है तब जगत् का पालक सर्वान्तर्यामी श्रीरामजी लोगों के दुःख को विनाश करने के लिये स्वकीय बाण द्वारा इन राक्षसों का विनाश करदेते हैं, अतः प्रत्येक व्यक्ति इन बाणों का सम्मान करते हैं। एतादृश श्रीरामजी का शस्त्रास्त्र समुह शीघ्र मेरे विघ्न राशि को विनाश करता हुआ समस्त मङ्गल को प्रदान करे ॥३॥

☬ श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी के दश प्रश्न ☬

तत्त्वं किं किञ्च जाप्यं परमिहविवुधैर्वैष्णवैर्ध्यानमिष्टम् ?
मुक्तेः किं साधनं सत्सुमतिमतिमतो धर्म एकोऽस्ति कश्च।
धर्माणां वैष्णवास्ते गुरुवर ? कतिधा लक्षणं किञ्च तेषाम् ?
कालक्षेपः किमाप्यं कथमुरुशुभदं कुत्रकार्यो निवासः ॥४॥

भगवान् भाष्यकार श्रीरामानन्दाचार्यजी के बारह शिष्य रत्न थे उनमें से श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी ने दुःख महोदधि में निमज्जमान जीवराशि को देखकर के उन दुःखी जीवों के उद्धार करने की इच्छा से स्वकीय गुरुदेव जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी से दश प्रश्न पूछे हैं-हे पूजनीय गुरुवर ? इस असार मरुमरीचिका की तरह प्रतिभासमान दुःखनिधान संसार में तत्व क्या है ? तथा विद्वान् श्रीवैष्णवों का सर्वजपों में श्रेष्ठ जाप्य क्या है, अर्थात् कौन ऐसा जप है कि जो सर्वश्रेष्ठ हो, ध्यानों में सर्वोत्तम ध्यान क्या है ? तथा सर्वोत्तम मोक्ष का साधन-कारण क्या है अर्थात् किस साधन के द्वारा साधक मोक्षरूप परमपद को प्राप्त करते हैं। धर्म अनेक प्रकार के हैं, उन धर्मों में सर्वश्रेष्ठ एक मुख्य धर्म कौन है ?

वैष्णव कितने प्रकार के होत हैं ? और उन श्रीवैष्णवों का लक्षण क्या है ? अर्थात् किस चिह्न विशेष से जाना जा सकता है कि-ये श्रीवैष्णव हैं और उन श्रीवैष्णवों को आर्यावर्त ब्रह्मावर्तादिक किस देश में निवास करना चाहिये, एवं उन श्रीवैष्णवों को किस प्रकार से अहोरात्रादि काल का यापन करना चाहिये । तथा जो उपर्युक्त साधनों से युक्त हैं, उन श्रीवैष्णवों को मोक्षरूप फल विशेष को देने वा प्राप्त होने के योग्य पदार्थ क्या है ? अर्थात् इन सव साधनों के द्वारा प्राप्य वस्तु क्या है ।४।

☬ आचार्यश्री का प्रतिज्ञावाक्य ☬

इत्थं पृष्टस्त्वया यः सकलहितकरः प्रश्नराशिर्गरिष्ठो,
वेद्यः सर्वश्रुतीनां जगति सुरसुरानन्द? सद्योमया सः ।
प्राचीनाचार्यवर्यान् यतिपतिसहितान् सादरं संप्रणम्य
सम्यक् शास्त्रानुसारं गुरुनिरत ? समाधीयते श्रूयतां तत् ।।५।।

पूर्वोक्त रीति से श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी का दशों प्रश्नों को सुन करके भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी कहते हैं-"**इत्थं पृष्टस्त्वया यः**" इत्यादि । हे सुरसुरानन्द ? तुमने पूर्वोक्त प्रकार से सकल लोगों के हितकारक सर्वश्रुति द्वारा प्रतिपादित अति गूढ प्रश्न समुदाय को पूछा है । उनका उत्तर-श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन प्रभृति पूर्वाचार्य सहित प्राचीनाचार्यों को नमस्कार करके शास्त्र के अनुकूल अथवा सर्वशास्त्र प्रतिपाद्य उन सव प्रश्नों का यथावत् मैं उत्तर देता हूँ-सावधान होकर के उसको सुनो ? । और उनका समीचीन रूपसे मनन करके लोक में प्रचार करो ।, जिससे अज्ञानान्धरूप संसार कूप में पतित पुरुषों का उद्धार हो ।।५।।

☬ प्रकृतिनिरूपणम् ☬

पृष्टानामेकमाद्यं त्रिकमपिश्रृणुतद्भेदतो नामभेदै-
र्नित्याज्ञाचेतना सा प्रकृतिरविकृतिर्विश्वयोनिः शुभैका ।
नाना वर्णात्मिकाऽजा त्रिगुणसुनिलयाऽव्यक्तशब्दाभिधेया
निर्व्यापारापरार्था महदहमितिसूरुच्यते तत्त्वविद्भिः ।।६।।

तत्त्व विषयक श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी के प्रश्नों के उत्तर देने के लिये आचार्य प्रवर भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी कहते हैं कि-हे सुरसुरानन्द ? तुमने जो तत्त्वादि

विषयक दश प्रश्नों को पूछा है, उनमें से जो तुम्हारा प्रथम प्रश्न है अर्थात् तत्त्व, क्या है ? इत्याकारक प्रश्न है, उसका उत्तर सुनो-तत्त्व को जाननेवाले श्रीव्यास-पराशर बोधायन आदि महर्षियों ने ऐसा कहा है अर्थात् तत्त्व तीन प्रकार के होते हैं। अचित्-प्रकृति, चित्-चेतन बद्धादिक जीव समुदाय तथा सर्व जगत् के कारण सर्व शेषी परमेश्वर श्रीरामचन्द्रजी ये तीन प्रकार के तत्त्व शास्त्रों में श्रीपराशर व्यासादि के द्वारा प्रतिपादित हुये हैं। उनमें से जो प्रथम अचित् पदार्थ है वह नाम भेद से अर्थात् वाचक पद के भेद से नित्य उत्पाद विनाश रहित कहलाती है। अर्थात् परमेश्वर के शेष होने से इसका आविर्भाव तिरोभाव नहीं होता, तथा इसको अज्ञा-ज्ञानभिन्न कहते हैं, अचेतना कहते हैं, अर्थात् ज्ञान का अधिकरण नहीं है, जड है, यह प्रकृति पदवाच्य सव का उत्पादक है, अविकृति है विकार दोष रहित है अर्थात् उत्पन्न नहीं होती है, विश्वयोनि है सम्पूर्ण जड जगत् का कारण है, नाना वर्ण वाली है अर्थात् शुक्लादिभेद से अनेक प्रकारक सरूप विरूप कार्यों का उत्पादक है। अजा है जन्मरूप विकार वर्जित है। त्रिगुणसुनिलया-सत्वगुण का निदानस्थान है एवं अव्यक्त है चक्षुरादि इन्द्रियों से ग्राह्य होनेवाली नहीं है, निर्व्यापार है जड होने से स्वतः व्यापार रहित है, पदार्थ है जीव के भोगापवर्गरूप कार्य का सम्पादन करने वाली है। एवं महत्तत्त्व अहङ्कारादि लक्षण कार्य का सम्पादन करनेवाली है। इसप्रकार तत्त्व घटक प्रथम अचित् पदार्थ का निर्वचन प्राचीनाचार्यों ने किया है ॥६॥

॥ जीवनिरूपणम् ॥

नित्योऽज्ञश्चेतनोऽजः सततपरवशः सूक्ष्मतोऽत्यन्तसूक्ष्मो
भिन्नो वद्धादिभेदैः प्रतिकुणपमसौनैकधासूरिवर्यैः ।
श्रीशाक्रान्तालयस्थो निजकृतिफलफुक्तत्सहायोभिमानी'
जीवः संप्रोच्यते श्रीरघुपतिसुमते ? तत्त्वजिज्ञासुवेद्यः ॥७॥

आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी के शिष्यरत्न श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी ने शान्ति विनयादि शिष्य गुण से सम्पन्न होकर के भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज के समीप में आकर के सकल मनुष्य के कल्याण के लिये पूछा था कि हे भगवन् ? इस जगत् में ज्ञातव्य वस्तु क्या है ? जिनको जान लेने के वाद जिज्ञासु जीव भगवत् पद को प्रास करके कृतार्थ हो जाता है, एतादृश प्रथम प्रश्न को जान

ने कहा कि हे सुसुरानन्द ? तुमसे पूछे गये प्रश्नों में से प्रथम प्रश्न का उत्तर यह है कि तत्त्व तीन प्रकार का होता है ऐसा शास्त्र में कहा गया है। उनमें प्रथम तत्त्व प्रकृति महत्तत्त्व और अहङ्कारादि महाभूत पर्यन्त अचित् पदार्थ है उनमें से प्रथम अचित् पदार्थ का विस्तार पूर्वक निर्वचन छठे श्लोक में किया गया है। उसके वाद उद्देश क्रम से आगत द्वितीय चित् पदार्थ का स्वरूप लक्षण आदि का प्रतिपादन करते हैं-अचित् पदार्थ का निरूपण करके तदन्तर अवसर प्राप्त→चित् जीव के स्वरूप का प्रतिपादन करने के लिये कहते हैं-"**नित्योऽज्ञश्चेतनोऽजः**" इत्यादि हे श्रीरघुपति सुमते सुसुरानन्द ? यहाँ जीव के अन्तःकरण में रहनेवाले जो अविद्यादि दोष हैं उन दोषों को विनाश करनेवाले जो भगवान् श्रीसीतानाथ हैं तादृश रघुपति पदवाच्य श्रीसीतानाथ के चरणकमल में शोभन समीचीन बुद्धि है जिनकी एतादृश भगवान् के सेवक सुरसुरानन्द ? सूरिवर्य अर्थात् नित्य मुक्तों से अथवा पण्डित श्रेष्ठ व्यक्तियों ने वक्ष्यमाण लक्षण से युक्त जीवों का स्वरूप कहा है वह मैं सुनाता हूँ सावधान होकर के श्रवण करके उसका मनन करो क्योंकि **श्रोतव्यो मन्तव्यः** इत्यादि श्रुति कहती है कि श्रवण करो तथा श्रवण करके उस श्रुत पदार्थ का मनन करो अर्थात् तर्कयुक्ति द्वारा उसका विचार करो, विचार करने के वाद विचारित पदार्थ का निदिध्यासन करो। अर्थात् वक्ष्यमाण विशेषण विशष्ट जीव का स्वरूप कहा गया है उसका अनुशीलन करो। तथाहि-वह जीव कैसा है ? इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं-"**नित्यः**" वह जीव नित्य है, सर्वदा एकरूप है सनातन तथा अनादिमध्यनिधन है। अर्थात् प्रागभाव अप्रतियोगी होता हुआ ध्वंस का अप्रतियोगी है जो पदार्थ प्रागभाव तथा ध्वंस का प्रतियोगी होता है वह अनित्य कहलाता है जैसे घटपटादिक, जिसका कोई उत्पाजक कारण हो अर्थात् उत्पन्न हो उसका प्रागभाव होता है "**घटो भविष्यति**" घट होगा, चक्र मृत्तिकादि कारण के समवधान दशा में कहा जाता है कि "**यहाँ घडा उत्पन्न होगा**" तो यहाँ मृत्तिका में उत्पत्ति के पूर्व में घट का प्रागभाव रहता है तदनन्तर मृत्तिका में घटादि कार्य उत्पन्न होता है और वह घट उत्पन्न होकर के स्वजनक प्रागभाव का नष्ट कर देता है क्योंकि घट के उत्पन्न होने के वाद प्रागभाव नहीं देखने में आता है। प्रागभाव अनादि तथा शान्त माना जाता है। अर्थात् प्रागभाव अनादि अनुत्पन्न है तथा विशिष्ट होता है कोई तो प्रागभाव की निवृत्ति स्वरूप घट को मानते हैं और कोई कहते हैं कि घट प्रागभाव का निवर्तक

है जन्य पदार्थ का प्रागभाव होता है तथा जिस तरह घटादि कार्य का कारण मृदादिक है उसी तरह प्रागभाव भी कार्य का जनक होता है तथा कार्य के द्वारा ही विनष्ट होता है। जीव एतादृश प्रागभाव का प्रतियोगी नहीं होता है। अर्थात् उत्पन्न नहीं होता है अनादि है। तथा जिस तरह घटादिक कार्य दण्ड प्रहारादि के द्वारा विनष्ट होने से ध्वंस प्रतियोगी कहलाता है उसप्रकार जीव का विनाश नहीं होने से ध्वंस का प्रतियोगी भी नहीं होता है इसलिये जीव सनातन अर्थात् सर्वदा एक रूपसे रहने के कारण सर्वदा एक रूप सर्वदा अवस्थायी आदि मध्य निधन हीन है।

उपर्युक्त प्रकार से तर्क तथा युक्ति द्वारा चिद्द्रव्य जीव में सर्वदा एकरूप नित्यत्त्व अर्थात् आदि मध्य अन्त राहित्यत्त्व की सिद्धि होती है ऐसा बतलाया गया है। उपर्युक्त यह विषय श्रुति स्मृति द्वारा भी समर्थित होता है अर्थात् जीवरूप चित् द्रव्य में नित्यता की सिद्धि श्रुति स्मृति द्वारा भी सिद्ध होता है। तथाहि→

"प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणाश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ॥,
कार्य कारण कर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुख दुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥
पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान् ।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनि जन्मसु ॥ इति ॥

अयमर्थः-हे अर्जुन ? प्रकृति अर्थात् सर्व कार्य का उपादान कारण अचित् मूल प्रकृति तथा पुरुषचित् द्रव्य जीव ये दोनों अनादि हैं नित्य हैं आदि निधन हैं ऐसा समझो अर्थात् इन दोनों पदार्थों का न कभी जन्म होता है न वा इन दोनों का कभी विनाश होता है ये दोनों सर्वदा एक रूप हैं। और विकारादी जो सत्वादिक सुखादिक हैं ये सव प्रकृति जन्य होने से आविर्भाव शील हैं। सुखादिक में जो कार्यत्त्व है प्रकृति में जो सर्वोपादानत्त्व रूपकारणत्त्व है तथा पुरुष में जो कर्तृत्त्व का प्रतिभास होता है इन सव में कारण प्रकृति है अर्थात् कार्यत्त्व कारणत्त्व और कर्तृत्त्व के विपरिणाम के हेतु प्रकृति है, प्रकृति के द्वारा ही कार्य कारणादिभाव की व्यवस्था होने से प्रकृति ही सव का नियामक है। प्रश्नः-जब सव कार्य कारणादि की व्यवस्था प्रकृत्यधीन है तब पुरुष को मानने की क्या आवश्यकता है ? इसके उत्तर में भगवान् कहते हैं-

"पुरुषः सुखदुःखाना मित्यादि" सुख दुःखों का जो भोक्तृत्त्व है उसका कारण पुरुष है अर्थात् प्रकृति जड पदार्थ है तो जड में भोक्तृत्त्व का बाध होने से चेतन पुरुष की स्थिति मानी जाती है अर्थात् पुरुष भोक्ता होता है इसलिये प्रकृत्यतिरिक्त पुरुष का स्वीकार किया जाता है ।

प्रश्नः-**"ज्ञानानन्दमयोऽमलः"** इस वचन से सिद्ध होता है कि जीव ज्ञान आनन्दमय तथा सव प्रकार के मल से रहित है अर्थात् सव प्रकार के दोष से विवर्जित है तब जीव में भोक्तृत्त्वरूप विकार का प्रवेश किस तरह हुआ जिससे कि जीव को भोक्ता माना जाता है ? इसप्रकार के प्रश्न के उत्तर देते हुये भगवान् कहते हैं-**"पुरुषः प्रकृतिस्थो ही"**'त्यादि । यद्यपि स्वभावतः जव ज्ञानानन्दादि स्वरूप होने से भोक्तृत्त्वादि विकार का आश्रय नहीं है किन्तु प्रकृति कार्य मनुष्य देवादिकों में प्रकृति सम्बन्ध के बल से अनुप्रविष्ट होने से प्रकृति जनित सुख दुःखादिक विकारों का उपभोग करते हैं तथा सत् असत् योनियों में जो इन (जीवों) का जन्म होता है उन सव का कारण प्रकृति तथा प्राकृतिक कर्म का सम्बन्ध है । अर्थात् अविद्या तथा कर्मादिकों के सम्बन्ध से ये सव होते हैं । अर्थात् जीव स्वरूपतः निर्मल है तथापि अनादिकालिक भव परम्परा से उपार्जित कर्म के बल से देव मनुष्य तिर्यगादि शीरीरों में जन्म लेकर कर्मानुरूप तथा शरीरोचित सुखदुःख का अनुभव करते हैं यह उदाहृत स्मृति वचनों का सारार्थ होता है विस्तार विवेचन प्रकृत श्लोकों के आचार्यकृत आनन्दभाष्य तथा भाष्यतत्त्वदीप मेरे विवरण में देखें । इससे यह सिद्ध होता है कि जीव स्वरूप से नित्य हैं सनातन अनादि मध्यनिधन हैं । एवं स्मृत्यन्तर में भी कहा है-

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः,
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः" (२।२३)
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः ॥ (२।२४)

मनुष्यादिक शरीरों में शरीरी रूपसे विद्यमान इन जीवात्माओं को तलवार आदि शस्त्र समुदाय छेदन नहीं कर सकता है अर्थात् काट नहीं सकता है क्योंकि जीवात्मा निरवयव है और ज्ञानगुण के द्वारा व्यापक है जिस तरह आकाश व्यापक तथा निरवयव होने से आकाश में तलवार आदि सस्त्रों से छेदनादिक नहीं होता है उसी तरह जीव

को निरवयव तथा ज्ञानगुण द्वारा व्यापक होने से शस्त्रादि द्वारा विनाश नहीं किया जा सकता है। एवं इस जीवात्मा को जल क्लेदित नहीं कर सकता है क्योंकि जीव निरवयव है सावयव पदार्थ का अवयवों के विश्लेषण द्वारा क्लेदन होता है, एवं इस जीव को अग्नि जला नहीं सकती है क्योंकि सावयव पदार्थ का ही दहन होता है जीव तो निरवयव है। एवं वायु भी जीव को सुखा नहीं सकता है निरवयव होने से, किन्तु यह जीव अच्छेद्य अदाह्य है अक्लेद्य और अशोष्य है, इसलिये यह जीव नित्य है उत्पाद विनाश रहित है। सर्वगत अर्थात् ज्ञान गुण के द्वारा व्यापक है, जिस तरह सूर्य एक जगह में अवस्थित होने पर भी सर्वगत स्वप्रभा द्वारा अखिल ब्रह्माण्डोदर को भासित कराता है उसी तरह यह जीव ज्ञान गुण द्वारा सर्व पदार्थ का भासक होने से सर्वगत होता है, अत एव निदाघ समय में जाह्नवी जल निमग्न पुरुष को सम्पूर्ण शरीर में शैत्य का अनुभव होता है। यद्यपि जीव स्वरूप से अणु परिमाण है तथापि ज्ञानगुण से सव को व्याप्त करके प्रकाशित करता है इसलिये जीव में व्यापकत्व का उपचार होता है, एवं स्थाणु-स्थिर हैं, चलनादि क्रिया से वर्जित हैं, तथा सनातन आदि मध्यान्त रहित हैं। इससे जीव में नित्यत्त्व सिद्ध होता है। एवं श्रुति वचनों से भी सिद्ध होता है कि जीवात्मा नित्य है अर्थात् अनादिमध्य निधन सनातन है। तथाहि-

"न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे"

यह ज्ञान का अधिकरण ज्ञानस्वरूप स्वभावतः अविद्या मलरहित जीवात्मा कभी भी **"न जायते"** जनि क्रिया का विषय नहीं होता है अर्थात् जीव कभी भी उत्पन्न नहीं होता है। इससे उत्पत्त्यादिक जो भाव विकार हैं उनमें से प्रथम भाव विकार जन्म का निराकरण श्रुति करती है। तथा यह जीव आत्मा कभी भी मरती नहीं है इससे छ भाव विकार का अन्तिम जो मरण रूप विकार है तादृश मरणात्मक भाव विकार का श्रुति से निराकरण किया जाता है-इस बात को यह काठक श्रुति कहती है। तथा यह जीव होकर के पुनः होनेवाला नहीं है ऐसा नहीं किन्तु होनेवाला ही है जो हो करके पुनः होनेवाला नहीं होता है वह उत्पाद विनाश शाली होता है जैसे घटादिक पदार्थ एक वार अस्ति क्रिया का विषय होकर के पुनः होनेवाला नहीं होता है अतः घटादिक उत्पाद विनाश शील होता है ऐसा देखने में आता है परन्तु यह आत्मा होकर के पुनः होनेवाली है। यहाँ **"नायं भूत्वा भूयो न भविता"** इस

जगह दो नकार पढा गया है और दो नकार प्रकृतार्थ का गमक होता है। नैयायिक लोग अभावाभाव को प्रतियोगी का ही स्वरूप मानते हैं **घटाभावाभाववद्भूतम्**" यह कहने से "**घटवद्भूतलम्**" ऐसा ही जाना जाता है तथा "**दुनोति न कच्चिदयं वृकोदरः**" इस भारवी के श्लोक में "**दुनोत्येव**" ऐसा अर्थ किया गया है। तदनुसारः-उसी तरह प्रकृत में "यह आत्मा होकर के पुनः होनेवाला नहीं है" ऐसा नहीं किन्तु होनेवाली ही है ऐसा अर्थ होता है। इसलिये एतादृश स्वभावक आत्मा है, इसलिये इस देवमनुष्यादिक शरीर में कर्मवल से अवस्थित आत्मा शरीर का हनन होने पर भी हनन क्रिया का कर्म तथा कर्ता नहीं बनती है। इस कारण से यह आत्मा अज है अर्थात् उत्पन्न नहीं होती है। नित्य है उत्पाद विनाश रहित है। तथा शाश्वत है सर्वदा अवस्थायी एक बार जो हो उसको शाश्वत कहते हैं, तथा यह आत्मा पुराण है पहले भी नवीन थी वर्तमान में भी नव है।

इन सव विशेषणों से छवों भाव विकार का निराकरण करके श्रुति जीव को नित्य बतलाती है इन सव प्रमाणों के द्वारा आत्मा में नित्यत्त्व को स्थिर करके आचार्य श्रीरामानन्दाचार्यजी ने कहा है "नित्य अर्थात् निरुप्यमाण जो चित् पदार्थ है जो कि इह लोक परलोक यात्रा तथा मोक्षाधिकारी है वह नित्य है। इसको कदाचित् अनित्य मान लिया जाय तव स्वर्गादि की व्यवस्था तथा बन्ध मोक्ष की व्यवस्था का उत्सादन अशक्य हो जायगा तथा चार्वाक मत में अनुप्रविष्ट होना पडेगा। इसलिये आचार्यजी ने जीव को सर्व प्रथम नित्य कहकर के शरीरादि से विलक्षण रूप में नित्यत्व का कथन किया है।

इस तरह जीव में नित्यत्त्व विशेषण को बतलाकर के द्वितीय विशेषण को बतलाते हैं "**ज्ञः**" इति। यह निरुप्यमाण चित्पदार्थ ज्ञ स्वरूप है अर्थात् जीव ज्ञान स्वरूप तथा ज्ञाता ज्ञानाधिकरण है अर्थात् ज्ञान दो प्रकार का होता है एक तो स्वरूपज्ञान तथा दूसरा धर्मज्ञान धर्मिज्ञान तथा धर्मज्ञान धर्मिज्ञानरूप जीव हैं और घटपटादि विषयक ज्ञान है। इसी को केवलाद्वैती स्वरूपज्ञान तथा वृत्तिज्ञान कहते हैं अर्थात् "**ज्ञानघनः**" इत्यादि श्रुति सिद्ध ज्ञानरूप जीव स्वरूप ज्ञान कहलाता है। तथा चक्षुरादिकरण द्वारा जायमान अन्तःकरण का परिणाम रूप ज्ञान वृत्तिज्ञान कहलाता है, यह ज्ञान यद्यपि अन्तःकरण का कार्य होने से जड है तथापि वृत्ति में ज्ञानत्त्व का उपचार करके इसको भी ज्ञान कहते हैं यह है वृत्तिज्ञान घटादि विषयक। इसी प्रकार

बौद्ध के मत में भी ज्ञान दो प्रकार का है-आलय विज्ञान तथा प्रवृत्ति विज्ञान, इसमें आलय विज्ञान को आत्मा कहते हैं तथा घटादि विषयक ज्ञान को प्रवृत्ति ज्ञान कहते है। तदुक्तम् "**तत्स्यादालय विज्ञानं यद्भवेदहमास्पदम् । तत्स्यात्प्रवृत्ति विज्ञानं यन्नीलादिकमुल्लिखेत्** इति। और स्वकीय विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय में इसी को धर्मि तथा धर्मज्ञान कहते हैं तो जीव स्वयं धर्मिज्ञान रूप है तथा धर्मज्ञान का अधिकरण होने से ज्ञाता कहलाता है। इसका विशेष विवेचन "**ज्ञोऽतएव**" इस सूत्र के आनन्दभाष्य की भाष्यदीप टीका एवं मेरी भाष्यप्रकाश टीका में देखिये।

अथवा "**नित्योऽज्ञः**" यहाँ नञ् का छेद है और नञर्थ है अल्पत्त्व तब सर्वज्ञ परमेश्वर की अपेक्षा से जीव अल्पज्ञ है ऐसा अर्थ होता है। यद्यपि नञ् का अर्थ अन्यत्र निषेधरूप होता है तब अज्ञ शब्द का अर्थ होगा ज्ञान रहित तो सिद्धान्त विरोध होगा ? तथापि जिस तरह नञ् का अर्थ निषेध आदि होता है उसी तरह अल्पत्वादिक भी होता है-तदुक्तम्-"**तत्सादृश्यमभावत्वं तदन्यत्वं तदल्पता । अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः ॥** सादृश्य, अभाव, अन्यत्व अल्पता, अप्राशस्त्य और विरोध छ अर्थ समासान्तर्गत नञ् का होता है-यथा **न इक्षुरनिक्षुः सरः**" इक्षु सदृशः अर्थात् जिस सरोवर का जल अतिमिष्ट है तथा जो सरोवर इक्षु की तरह लम्बायमान है तादृश स्थल में 'अनिक्षुः सरः' ऐसा प्रयोग होता है उस स्थल में न इक्षुरनिक्षु ऐसा समास करने पर तथा नुडागम होने पर नञ् जो कि समासोत्तर नुट् के पूर्व में विद्यमान है वह योग्यता के बल सादृश्य अर्थ को बतलाता है न तु अभाव प्रभृति अर्थ को बतलाता है। एवम् "**अघटं भूतलम्**" इस स्थल में नञ् अभाव रूप अर्थ को बतलाता है अर्थात् भूतल घटामान वाला है। एवं "**अघटः पटः**" यहाँ घटभिन्नः पटः यह अर्थ होता है इसलिये नञ् भेदरूप अर्थ का प्रतिपादक होता है न तु अभावादिक अर्थ का प्रतिपादन करता है। एवं '**अलवणकं शाकम्**' जहाँ साग के अन्दर थोडा रामरस (नमक) डाला गया हो उस जगह में भोजन करनेवाले कहते हैं कि साग में नमक नहीं है अर्थात् साग में जितने प्रमाण में रामरस छोडना चाहिये उतना नहीं छोडा गया है किन्तु प्रमाण से अल्प नमक छोडा गया है तो इस स्थल में नञ् का अर्थ अत्यन्ताभाव नहीं है किन्तु अल्पता ही अर्थ है-यथा वा "**अनुदरा कन्या**" नास्ति उदरं यस्याः सा अनुदरा यहाँ नञ् का अर्थ अभाव नहीं है क्योंकि उदरात्यन्ताभाव प्रत्यक्ष बाधित हैं अतः अल्पत्व अर्थ प्रत्यक्ष सिद्ध है छोटा पेट होने से। एवं "**अब्राह्मणो**

वार्धुषिकः" यह वार्धुषिक नामक व्यक्ति अब्राह्मण है अर्थात् अप्रशस्त ब्राह्मण है यह अर्थ होता है न तु ब्राह्मणत्व रहित है अथवा ब्राह्मण रहित है ऐसा अर्थ नहीं होता है। इसलिये अप्राशस्त्य भी नञर्थ होता है। एवं **न सुरोऽसुरः** सुर विरोधी यहाँ सुरभिन्न यह अर्थ यदि किया जाय तब तो देवभिन्न मनुष्यादिक में भी असुरत्व हो जायगा, अतः प्रकृत नञर्थ विरोधरूप ही है। इसप्रकार से समासान्तर्गत नञ् का छ अर्थ होता है। प्रकृत "**अज्ञः**" इस स्थल में सर्वज्ञ परमेश्वरापेक्षया जीव में अल्पज्ञान है ऐसा अर्थ अज्ञ का है न तु ज्ञानसामान्याभाववान् अर्थ है क्योंकि वनस्पति से लेकर ब्रह्मान्त जीवों में ज्ञान के तारतम्य पूर्वक ज्ञानमात्रा सर्वत्र उपलब्ध है। श्रुति भी कहती है "**ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ**" ज्ञः अज्ञः ये दोनों अज अजन्मा हैं तथा इनमें से एक ईश परमेश्वर हैं और दूसरा अनीश अर्थात् जीव है। इसमें "**ज्ञः**" ऐसा पाठ हो तब तो जानने वाले को ज्ञ कहते हैं अर्थात् जड भिन्न न तु प्रकृति की तरह जड है, एवं यह जीत्र चित्पदार्थ चेतन है ज्ञानवान् है। एवं यह चित् पदार्थ अज है-उत्पन्न होने वाला नहीं है अर्थात् जन्म मरणादि भाव विकार से रहित है। एवं यह जीव चित्पदार्थ सतत सर्वदा सर्वकाल में जीव भिन्न परमात्मा के वश अधीन होकर के रहनेवाला है अर्थात् सर्वत्र सर्वदा प्रधान पराधीन है, ईश्वर के अधीन होकर के ही रहता है स्वतन्त्र कभी भी नहीं है।

पुनः यह जीव कैसा है ? तो कहते हैं-"**सूक्ष्मतोऽत्यन्तसूक्ष्मः**" सूक्ष्म रूपमें प्रसिद्ध जो अणु परमाणु उन परमाणु से भी अधिक सूक्ष्म है। सिद्धान्त में जीव को मध्यम देह परिमाणक तथा व्यापक नहीं माना गया है किन्तु अणु परिमाणक माना गया है। क्योंकि मध्यम परिमाणवान् मानेंगे तव अनित्यत्व देहादि की तरह हो जायगा और व्यापक परिमाणवान् मानेंगे तव शरीर से उत्क्रमण तथा गमनागमन नहीं होगा, इसलिये जीव सूक्ष्म से भी अधिक सूक्ष्म है। यद्यपि अणु परिमाण पक्ष में सकल शरीरगत जो शैत्यादिक का उपलम्भ होता है वह नहीं होगा क्योंकि जीव तो सर्वावयवावच्छेदेन शरीर में नहीं रहता है शरीर के एक देश में रहता है। तथापि सूर्य प्रभा की तरह जीव गुणज्ञान द्वारा सर्वत्र रहता है। इसलिये सम्पूर्ण शरीर में एक ही समय में सुखदुःखादिकों का उपलम्भ होता है, अतः जीव को अणु मानने में कोई आपत्ति नहीं होती है, प्रत्युत श्रुति भी जीवाणुवाद का ही समर्थन करती है। तथापि-

"बालग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्प्यते ॥" इति ।

अर्थात् एक बाल-रोम का जो अग्रभाग है उस केश के अग्रभाग को सौ भाग किया जाय और उसमें से एक भाग को पुनः सौ भाग करने पर जो सौवां भाग है उसके बराबर जीव को समझना चाहिये । अर्थात् शरीरस्थित सूक्ष्म एक रोम का जो सहस्रांश भाग है उसके बराबर का जीव परिभासित होने से जीव अति सूक्ष्म है । ऐसा कहा भी है-**"रोम्णः सहस्त्रभागेन सूक्ष्मासु विचरत्ययम्"** एक रोम का जो सहस्त्र भाग है उसके तुल्य सूक्ष्म जो सूक्ष्म नाडी है उन नाडियों में चलनेवाला जीव है, इसलिये अतिसूक्ष्म तथा अनन्त है । एतादृश अणु परिमाणक जीव भक्त्यादि द्वारा प्रसादित श्रीसीतानाथजी की कृपा से आनन्त्य मोक्ष को प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं । श्रुत्यन्तर से भी जीवाणुत्व सिद्ध होता है-**"एषोणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः"** यह जीवात्मा अणु है जिस तरह परमाणु प्रत्यक्ष नहीं होता है । उसी तरह जीव भी प्रत्यक्ष नहीं होगा ? तव **"अहं सुखी"** इत्यादि प्रत्यक्ष का बाध होगा ? इस शंका का निराकरण श्रुति करती है-**'चेतसा वेदितव्यः'** इस वाक्य से, उस जीव को जो अतिसूक्ष्म है उसको निर्मलान्तःकरण से जानो । इसप्रकार से सिद्ध होता है कि जीव सूक्ष्मरूप से प्रसिद्ध परमाणु से भी अधिक सूक्ष्म है । तथा पुनः कैसा जीव है ? इसके उत्तर में कहते हैं-**"प्रतिकुणपम्"** इत्यादि कुणप शब्द का अर्थ होता है शरीर के सम्बन्ध से बद्ध जीव मुक्त जीव इत्यादि भेद से अनेक प्रकारक अर्थात् बद्ध जीव भी असंख्येय हैं तथा मुक्त जीव भी असंख्येय होने से अनेक प्रकार का होता हुआ अपरिमित हैं । पुनः जीव **श्रीशाक्रान्तालयस्थः** श्रीश कहते हैं श्रीसीतानाथजी को, **श्रियः श्रीश्च भवेदग्र्याः** ऐसा श्रीमद्रामायण में महर्षि श्रीवाल्मीकिजी लिखते हैं अतः श्रीसीताजी के ईश भगवान् श्रीरामजी से अन्तर्यामी रूपसे आक्रान्त अधिष्ठित जो आलय पाप पुण्य का आलय शरीर तादृश भगवदधिष्ठित षाट्कौशिक शरीर में जीव निवास करता हुआ । आचार्यजी शरीर भेद से जीव को अनेक अपरिसंख्येय मानते हैं, अन्यथा बन्ध मोक्ष व्यवस्था सुखित्व दुःखित्व व्यवस्था नहीं बन सकेगी । एतादृश यह जीव शरीर भेद से नाना होता हुआ अन्तर्यामी परमात्मा से अधिष्ठित इस शरीर में निवास करता हुआ **"निजकृत फलभुक्** स्व से सम्पादित सुकृत दुष्कृत कर्म का फल है सुखादिक उसका भोक्ता है । यद्यपि इस शरीर में जीव परमात्मा ये दोनों रहते

हैं तथापि शरीर द्वारा सम्पादित कर्मफल का उपभोग जीव को ही होता है परमेश्वर को फल भोग नहीं होता है। क्योंकि फलभोग का निमित्त कारण जो पुण्य पाप है वह ईश्वर में नहीं होता है-"**क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष ईश्वरः**" ऐसा श्रीपतञ्जलि ने कहा है। कर्मफल का भोक्ता जीव है परमेश्वर नहीं इसवात का प्रतिपादन श्रुति करती है-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नयोऽभिचाकशीति ॥

अर्थात् शरीर रूप एक वृक्ष के ऊपर रहनेवाले परस्पर समान तथा अतिपरिचित होने से मित्र भाव को प्राप्त किये हुए दो शोभन पक्षवाले पक्षी जीव तथा परमेश्वर निवास करते हैं अर्थात् इस शरीररूप वृक्ष पर जीव तथा परमेश्वर रहते हैं। इन दोनों चेतन के बीच में एक पक्षी अर्थात् जीवात्मा स्वकृत कर्मफल का भोक्ता है और द्वितीय पक्षी परमात्मा कर्मफल का उपभोग न करते हुए प्रकाशित होते हैं, जिस भगवान् के प्रकाश से प्रकाशित हो करके सूर्यादिक प्रकाशित होते हैं ऐसा स्वप्रकाश रूप भगवान् स्वयं प्रकाशित हैं। तथा यह जीव "**तत्सहायः**" है अर्थात् परमात्मा है सहायक जिसका एतादृश यह जीव है तथा "**अभिमानी**" है अर्थात् मैं भोक्ता हूँ कर्म का कर्ता हूँ इत्यादि अभिमानवान् है। तथा यह जीव "**तत्वजिज्ञासु**ओं से वेद्य जानने के योग्य है अर्थात् जो व्यक्ति तत्व को जानने की इच्छा रखते हैं उनके द्वारा तत्वरूप से जिज्ञास्य है ऐसा विद्वानों ने जीवरूप को बतलाया है। ऐसा होने से अणुत्व पारतन्त्र्य विशिष्ट नित्य अनेक प्रकारक स्वकृत कर्मफल का भोक्ता जीव है ऐसा पूर्वाचार्यों का कथन है। यह जीव-चित्पदार्थ तीन प्रकार के होते हैं-बद्ध जो संसार में रह करके ऐहिक तथा पारलौकिक विहित प्रतिषिद्ध कर्म का अनुष्ठान करके तादृश कर्म का भोगने के लिए तत्तत्कर्म के अनुकूल फल को भोगते हुए घटी यन्त्रवत् एक योनि से द्वितीयादि योनि में सर्वदा भ्रमण करते हैं ऐसे बद्ध कहलाते हैं और द्वितीय जीव हैं मुक्त जो कि भक्ति ज्ञान द्वारा भगवान् की शरणागति को स्वीकार करके स्वकर्म भोगान्त में जाकर के भगवान् श्रीसीतानाथजी का कैङ्कर्य करते हुए भगवान् के साथ रह करके ईश्वरीय लीला के रस का अनुभव करते हैं। तृतीय जीव हैं नित्यसूरि जो कि कभी संसार में नहीं आये न वा आने वाले हैं श्रीहनुमान् प्रभृतिक, ये लोग भगवान् के साथ रहकर के कैङ्कर्य करते हुए लीलाविभूति तथा नित्यविभूति

का अनुभव करते रहते हैं। ये तीन विभागों में विभक्त जो जीव समुदाय हैं ये प्रत्येक वर्ग में विद्यमान जीवराशि प्रत्येक अनन्त हैं इनकी संख्या नियत नहीं होने से असंख्येय हैं। यहां कोई कोई वादी कहते हैं कि आत्मा एक ही है अनेक नहीं। ऐसा कौन है ? ऐसा पूछें तो जीव के अद्वैत प्रतिपादक शास्त्र में कुछ कुदृष्टिलोग है, ब्रह्माद्वैत तथा जीवाद्वैत प्रतिपादक शास्त्र में ज्ञायमान जो अद्वैत है वह दो प्रकार का है ब्रह्माद्वैत तथा जीवाद्वैत, इसमें प्रकारी के अद्वैत की ब्रह्माद्वैत कहते हैं और जीवाद्वैत को प्रकाराद्वैत कहते हैं इसका क्या नियामक है ? ऐसा पूछें तो-ब्रह्म प्रकरण में तत्तत्स्थलों में **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्"** पुरुष एवेदं सर्वम् इत्यादि स्थल में सामानाधिकरण्य से ब्रह्माद्वैत का प्रतिपादन होता है क्योंकि सामानाधिकरण्य जो है वह प्रकार भेद विशिष्ट प्रकारी के एकत्व परक होता है **"एकः सन् बहुधा विचचार"** इत्यादि स्थल में प्रकार का बहुत्व प्रतिपादित हुआ है। **"नेह नानास्ति किञ्चन"** इत्यादि वाक्य है वह प्रकारी बहुत्व का निषेध परक है ! इस प्रकारी ब्रह्म का जो एकत्व है उसी को ब्रह्माद्वैत कहते हैं। प्रकाररूप जो जीव है उसका बहुत्व तो श्रुति सिद्ध है अन्यथा बद्ध मुक्त की व्यवस्था नहीं होगी गुरु शिष्य व्यवस्था अनुपपन्न हो जायगी तथा सुखित्व दुःखित्व व्यवस्था नहीं घटेगी इसलिये जीवैक्य नहीं है किन्तु तीनों वर्गों में रहनेवाले जीव प्रत्येक असंख्येय ही हैं एक नहीं है। यदि आत्मा में भेद न माना जाय किन्तु अभेद मानें तव तो एक को सुखानुभव काल में अन्य व्यक्ति को दुःखानुभव नहीं होना चाहिये परन्तु ऐसा तो नहीं होता है एवं कोई संसार में आता है कोई मुक्त होता है यह भी एकात्मवाद में नहीं होगा तथा कोई गुरुपदेशक है कोई शिष्य होता है एतादृश गुरु शिष्य भाव व्यवस्था भी नहीं होगी तथा विषमसर्ग भी अनुपपन्न होगा एकात्मवाद पक्ष में तथा एकात्मवाद पक्ष में आत्मभेद प्रतिपादक **"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया"** इत्यादि श्रुति के साथ विरोध भी होता है इसलिये एकात्मवाद पक्ष ठीक नहीं है। नहीं कहें कि-आत्मभेद प्रतिपादक श्रुति औपाधिक भेद का प्रतिपादन करती है जिस तरह आकाश स्वभाव से एक ही है तथापि घटादि उपाधि के भेदों से घटाकाश मठाकाश ऐसा भेद व्यवहार होता है उसी तरह प्रकृत में आत्मा स्वभाव से तो एक ही है तथापि देवमनुष्यादि भेद से भिन्न रूपेण व्यवहृत होता है ? ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि मोक्ष दशा में भी आत्मा में परस्पर स्वरूप भेद तो रहता ही है। यद्यपि मोक्षकाल में देवमनुष्यादि भेदों के

निवृत्त हो जाने पर आत्मा स्वरूप को अत्यन्त समान हो जाने से किसी भी प्रकार से अर्थात् वैधर्म्यादिक भेदक कारण के नहीं रहने पर किसी भी प्रकार से भेद कथन सम्भवित नहीं है तथापि परिमाण गुरुत्वादि आकारों के अत्यन्त समान होने पर भी जिस तरह कपोत रजत घट ब्रीहि प्रभृति पदार्थों में स्वरूप भेद सिद्ध होता है उसी तरह आत्माओं में भी स्वरूप भेद सिद्ध है इसलिये आत्मभेदवाद ही मान्य होता है। न तु जीवाभेद का स्वीकार करना युक्ति सिद्ध है न वा श्रुति सिद्ध है।

तीन विभागों में विभक्त इन तीनों जीवों का अनुगत लक्षण यह है कि **"शेषत्वे सति ज्ञातृत्वम्"** अर्थात् परमेश्वर का शेष होकर के जो ज्ञाता है उसको जीव कहते हैं। जो असाधारण धर्म जिसका होता है वह उसका लक्षण कहलाता है यथा-गन्धवत्व पृथिवी का असाधारण धर्म है तो गन्धवत्व पृथिवी का लक्षण होता है। यद्यपि उत्पत्ति कालावच्छेदेन घटादिक पृथिवी में गन्ध नहीं रहता है तथा प्रलयावच्छेदेन पृथिवी परमाणु में गन्ध नहीं रहता है। अतः गन्ध समानाधिकरण द्रव्यत्व व्याप्यजातिमत्व रूप ही पृथिवी का लक्षण कहलाता है। इसी तरह प्रकृत में भी जीवों का लक्षण होता है **"शेषत्वे सति ज्ञातृत्व"** अर्थात् सर्वशेषी सर्वेश्वर का शेष होकर के जो ज्ञाता ज्ञान क्रिया का कर्ता हो यह लक्षण जीवों का होता है। इसमें शेषत्व लक्षण विशेषण का ग्रहण यदि न किया जाय तव तो ज्ञानाधिकरण रूप ज्ञातृत्व तो परमेश्वर में भी होने से परमेश्वर में जीव लक्षण की अतिव्याप्ति होगी तो केवल ज्ञातृत्व जीव का असाधारण धर्म नहीं होगा, इसलिये शेषत्वे सति यह विशेषण दिया गया, एतादृश विशेषण देने से अतिव्याप्ति नहीं होती है क्योंकि ईश्वर में शेषत्व नहीं है अतः ईश्वर सवके शेषी ही होते हैं किन्तु किसी के शेष नहीं होते हैं जगद्गुरु श्रीसदानन्दाचार्यजी देशिक सम्राट् ने श्रीबोधायन पञ्चक में कहा है-

"रामोब्रह्म परात्परं श्रुतिमतं भक्त्यैव निश्रेयसम्,
शेषा येन च शेषिणो रघुपते जीवा इति स्वीकृतम्"

इत्यादि। जो अधिकरण के अतिशयाधानेच्छया उपादेय स्वरूपक हो वह शेष कहलाता है ईश्वर ऐसे नहीं हैं इसलिये किसी के शेष नहीं हैं किन्तु सब के शेषी ही हैं। एवं यदि शेषत्व मात्र जीव का लक्षण कहें ज्ञातृत्व रूप विशेष्य का उपादान न करें तब परमेश्वर का शेषरूप पृथिव्यादिक जड पदार्थों में भी लक्षण समन्वय होने से अति व्याप्ति होगी पृथिव्यादिक सकल पदार्थ ईश्वर के शेष हैं इसलिये ज्ञातृत्वरूप

विशेष्य का ग्रहण किया जाता है यथोक्त विशेष्य का उपादान करने से पृथिव्यादि जड पदार्थों में उक्त जीव लक्षण की अतिव्याप्ति नहीं होती है। इस तरह लक्षण का अति व्याप्ति अव्याप्ति तथा असम्भव रूप दोषत्रय रहित होने से यह शेषत्वे सति ज्ञातृत्व असाधारण धर्म है तथा असाधारण धर्म होने से त्रिविध जीवों का शेषत्वे सति ज्ञातृत्व अनुगत लक्षण होता है। यदि लक्षण में अव्याप्ति अतिव्याप्ति तथा असम्भव दोष रहे तो क्या आपत्ति होगी ? तो भागासिद्धि व्यभिचार तथा स्वरूप सिद्धिरूप दोषात्मक हेत्वाभास इतर भेदानुमान में हो जायगा, यही आपत्ति होगी इन सव बातों को अन्यत्र देखिये। ग्रन्थ विस्तारभय से उन सव दोषों को नहीं बतला करके संक्षेप रूपसे कथन किया गया है। और बद्ध, मुक्त, नित्य, मुक्त ये तीनों प्रकार के जीव वर्ग हैं इन सव का विषय प्रकाशक जो धर्मरूप ज्ञान है वह **"सत्यं ज्ञानमानन्दम्" प्रज्ञानघनः** इत्यादि श्रुति सिद्ध धर्मीभूत स्वरूप ज्ञान की तरह नित्य द्रव्य अजड और-आनन्दरूप है। अर्थात् जिस तरह ज्ञानात्मक जीव नित्य है द्रव्य है अजड तथा आनन्द रूप है उसी तरह इन तीनों जीव का जो विषय प्रकाशक धर्मज्ञान है जिस ज्ञान के आश्रय बनने से ये तीनों प्रकार के जीव ज्ञाता कहलाते हैं वह धर्मभूत ज्ञान भी नित्य है द्रव्य रूप है अजड है और आनन्दरूप है। अर्थात् जैवीय स्वरूप ज्ञान में जिस तरह नित्यत्व द्रव्यत्व अजडत्व तथा आनन्दरूपत्व है उसी तरह जीव का जो विषय प्रकाशक धर्मभूत विज्ञान है उसमें भी नित्यत्व द्रव्यत्व अजडत्व तथा आनन्दरूपत्व है।

प्रश्नः-जव जीव तथा धर्मभूत ज्ञान में सर्वांश में समता है तव तो धर्मभूत ज्ञान तथा धर्मिभूत ज्ञानात्मक जीव में परस्पर में विलक्षणत्व किस तरह होगा अर्थात् जव दोनों समान हैं तव यह ज्ञान है तथा यह जीव है हत्याकारक विभाग कैसे-होगा ?

उत्तर-जीव का जो स्वरूप ज्ञान है वह धर्मी है संकोच विकाशरूप क्रिया का आश्रय नहीं बनता है अर्थात् स्वरूप ज्ञान का संकोच विकाश नहीं होता है सर्वदा एक रूपमें रहता है तथा आत्म व्यतिरिक्त का प्रकाशक नहीं होता है तथा स्व के लिये स्वयं प्रकाशक होता है और अणु परिमाणक हैं यह तो जीव के स्वरूप ज्ञान का स्वरूप है। और विषय प्रकाशक जो ज्ञान हैं वह धर्म हैं अर्थात् धर्मी जीव का धर्म हैं जीवाश्रित है तथा संकोच विकाशशील है अर्थात् धर्मज्ञान का संकोच विकाश होता है तथा स्वभिन्न घट पटादि बाह्य तथा आन्तर वस्तु का प्रकाशक है तथा स्व के लिये स्वयं प्रकाश नहीं है तथा आत्मा के लिये प्रकाशक है और व्यापक है यह धर्मज्ञान

का स्वरूप है। अर्थात् धर्मित्व संकोच विकाशायोग्यत्व स्वभिन्न विषयाप्रकाशत्व स्वयं प्रकाशत्व और अणुत्व ये सव वैलक्षण्य स्वरूप ज्ञान का है, तथा धर्मत्व संकोच विकाश योग्यत्व स्वभिन्न विषय प्रकाशत्व स्व के लिये स्वयं प्रकाश राहित्य स्वाश्रय के लिये स्वयं प्रकाशत्व और व्यापकत्व ये सव वैलक्षण्य ज्ञान का है जिसको धर्म ज्ञान कहते हैं उसका है। पण्डित सम्राट् स्वामी श्रीवैष्णवाचार्यजी ने श्रौतप्रमेयचन्द्रिका के प्रभा नामक स्वव्याख्यान में लिखा है कि-"यह ध्यान में रखना चाहिये कि जीव प्रत्यक् अजड (स्वयं प्रकाश) द्रव्य है अर्थात् स्वार्थ स्वयं प्रकाश द्रव्य है और धर्मभूत ज्ञान पराक् अजड द्रव्य है अर्थात् पदार्थ स्वयं प्रकाश द्रव्य है इसलिये जीव और धर्मभूत ज्ञान दोनों भिन्न भिन्न द्रव्य हैं एक नहीं"

प्रश्नः-आपने कहा है कि जीव का जो धर्मज्ञान है वह विभु-व्यापक है अणु नहीं तव तो प्रत्येक जीव का ज्ञान व्यापक रूपसे तो उपलब्ध नहीं होता है किन्तु व्याप्य रूपसे ही उपलम्भ होता है? उत्तर-ये जितने जीव हैं उनमें से किसी का ज्ञान तो सर्वदा व्यापक ही रहता है यथा नित्य मुक्त का, तथा संसारी जो बद्ध जीव है उनका ज्ञान सर्वदा अविभु ही होता है और मुक्त जो पुरुष हैं उनका ज्ञान पूर्वावस्था में अविभु होता है तथा उत्तरावस्था में विभु रहता है। कहने का अभिप्राय यह है कि ज्ञान में संकोच विकाश मूलक विभुत्व का व्यवहार होता है तथाहि-"**अज्ञान शून्या अमरा**" इस वचन के अनुसार परमेश्वर के ज्ञान में कभी भी संकोच नहीं होने के कारण परमेश्वर के स्वरूप गुण तथा उनकी विभूतियों का सदा अनुभव करनेवाले जो नित्यसूरि हैं तादृश नित्यसूरि का जो ज्ञान है वह व्यापक है अर्थात् नित्यसूरियों का ज्ञान कभी भी संकुचित नहीं होता है क्योंकि संकोच का कारण अविद्या तथा कर्म है वह तो नित्यसूरि में नहीं है, इसलिये प्रतिबन्धक का अभाव होने से नित्यसूरि का ज्ञान सर्वदा विकसित रहने से विभु कहलाता है, तथा संकुचित ज्ञान तथा पाप कर्मों से दूषित शरीर वाले बद्ध जीवों का ज्ञान कर्म के अनुसार संकोच विकाशवान् होने से सर्वदा अविभूत ही रहता है। एवं "**तीरं दृष्टवन्तः**" (संसार के पार को देख लिया) इस वचन के अनुसार परमेश्वर की कृपा से संसार को पार करके संसार के अन्तिम तीर को प्राप्त किये हुए जो मुक्त पुरुष हैं उनका जो ज्ञान है वह पूर्वावस्था में अर्थात् संसारावस्था में अव्यापक है क्योंकि कर्म प्रतिबद्ध है। और उत्तरावस्था में-मोक्षावस्था में कर्म रहित होने से विभु है। "**सर्वं ह पश्यः पश्यति**" (मोक्ष को प्राप्त

किया हुआ जीव भगवान् की सभी लीलों को देखता है) इस वचन के अनुसार मुक्तों का ज्ञान विभु होता है अन्यथा शास्त्र प्रतिपादित सर्व दर्शन अनुपपन्न हो जायेगा, इसलिये मुक्तजीव का ज्ञान कालकृत व्यापक भी है, तथा अविभु भी है। अर्थात् जो नित्यसूरि श्रीहनुमानजी आदि हैं जिन्होंने कभी भी संसार का अनुभव नहीं किया उन लोगों का जो ज्ञान है वह सर्वदा विभु है क्योंकि वे लोग भगवान् की सर्वप्रकार की विभूति का सर्वदा दर्शन करते रहते हैं इन महानुभावों का जो सकल दर्शन है वह ज्ञान के अविभु पक्ष में अनुपपन्न हो जायगा। इष्टापत्ति कह नहीं सकते हैं क्योंकि **"अज्ञान शून्या अमराः"** इत्यादि शास्त्र अप्रमाणिक हो जायगा। अतः नित्यसूरियों का ज्ञान विभु है, और सांसारिक कर्म प्रतिबद्ध जीवों का ज्ञान सर्वदा संकोच विकाशशील होने से सर्वदा अविभु है, और मुक्तजीव का ज्ञान काल विशेष में विभु है तथा काल विशेष में अविभु है।

प्रश्नः-जीव का जो धर्मज्ञान है वह जीव स्वरूप की तरह नित्य है अर्थात् विनष्ट नहीं होता है किन्तु एकरूप से ही रहता है ऐसा जो आपने कहा वह तो ठीक नहीं है क्योंकि जीव ज्ञान को नित्य मानें तव तो घटज्ञान मुझको हुआ **"घटज्ञानमुत्पन्नम्"** और पट का ज्ञान विनष्ट हो गया इत्यादि ज्ञान के उत्पाद विनाश विषयक जो प्रतीति होती है उसकी उपपत्ति किस तरह होगी। और उक्त प्रतीति सर्वलोकानुभव सिद्ध है इसलिये ज्ञान नित्य नहीं है ?

उत्तरः-आत्मसमवेत जो जीवज्ञान वह चक्षुरादि इन्द्रिय द्वारा बाहर निकल करके घटादि विषय का ग्रहण करता है तथा कालान्तर में निवृत्त भी हो जाता है इसलिये उत्पन्नं ज्ञानं विनष्टं ज्ञानम् इत्यादि लौकिक व्यवहार होता है अर्थात् ज्ञान का आविर्भाव तिरोभाव मात्र होता है न तु ज्ञान का उत्पाद विनाश होता है। अयमाशयः-"मोक्षदशा में जीव सव वस्तु को देखता है वह जीव आनन्त्य है" इससे यह सिद्ध होता है कि जीव का ज्ञान सर्व विषय तथा सर्व पदार्थ को ग्रहण करनेवाला है, **"यथा क्षेत्रज्ञ शक्तिः सा वेष्टिता नृपसत्तम ?** हेराजश्रेष्ठ ? सर्वत्र व्यास जीव की शक्ति जिस कर्म संज्ञक अविद्या से वेष्टित आवृत्त है" इत्यादि वचनों से सिद्ध होता है कि जीव की ज्ञानरूपी जो शक्ति है वह कर्म से संकुचित है। "हे राजन् ? क्षेत्रज्ञ की वह शक्ति कर्म से तिरोहित होने के कारण प्रत्येक प्राणियों में न्यूनाधिक भाव से रहती है, **"अप्राणिमत्सु स्वल्पा सा स्थावरेषु ततोधिका"** प्राण विवर्जित जो प्रस्तरादिक जीव

हैं उनमें स्वल्प मात्रा में ज्ञान रहता है और स्थावर वनस्पत्यादिकों में पूर्वापेक्षया कुछ अधिक मात्रा में ज्ञानशक्ति रहती है। इससे सिद्ध होता है कि कर्म के तारतम्य प्रयुक्त ज्ञान में तारतम्य होता है तथा-

'इन्द्रियाणां हि सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पादादिवोदकम्' ॥ इति ॥

अर्थात्-यदि चक्षुरादिक कोई भी एक इन्द्रिय जव विषयोन्मुख होती है तो उस पुरुष का ज्ञान बाहर हो जाता है जिस तरह दृतिः भिस्ती जलपात्र विशेष में एक जगह छेद हो जाने पर उस भिस्ती में रहा हुआ जो पानी है वह सव बाहर निकल जाता है उसी तरह एक भी इन्द्रिय के विषयोन्मुख होने पर ज्ञान विकसित हो करके विषय का ग्रहण करता है। इस वचन के अनुसार इन्द्रिय द्वारा ज्ञान बाहर निकल करके विषय का ग्रहण करता है तथा विषय ग्रहण से पुनः निवृत्त भी होता है एतादृश संकोच प्रयुक्त ज्ञान का तथा विनाश का व्यवहार होता है न तु ज्ञान का उत्पाद विनाश होता है अपितु आविर्भाव तिरोभाव ही होता है क्योंकि ज्ञान नित्य है। इन सव युक्तियों से ज्ञान में नित्यत्व सिद्ध होता है, तथा **"नहि विज्ञातु विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यते नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यते"** अर्थात् विज्ञाता जो जीव है उसका जो विज्ञान अर्थात् धर्मभूत ज्ञान है तादृश ज्ञान का विपरिलोप विनाश नहीं होता है अविनासी होने से। तथा द्रष्टा जो जीव उसका जो दृष्टि धर्मभूत विज्ञान उसका विपरिलोप विनाश नहीं होता है अविनाशी होने से। इन श्रुतियों से सिद्ध होता है कि जीव का जो धर्मभूत ज्ञान है वह नित्य है। नहीं कहें कि विज्ञाता जो जीव तद्रूप जो ज्ञान उसका विनाश नहीं होता है ऐसा श्रुति का अर्थ है न तु विज्ञाता जो जीव उसके विज्ञान का लोप नहीं होता है, यहाँ **"राहोः शिरः"** इसके समान अभेद में षष्ठी विभक्ति है, तो ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि **"देवदत्तस्य केवलम्"** इत्यादि सर्वत्र भेद अर्थ में ही षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होने से, प्रकृत में **"विज्ञातुर्विज्ञातेः"** यहाँ षष्ठी को अभेदार्थक मानना अविदित शब्द शास्त्रवान् पुरुष को ही शोभित है। नहीं कहें कि-**"देवदत्तस्य गन्तुः"** इस स्थल में अभेदार्थक षष्ठी विभक्ति को मान करके जिस तरह देवदत्त से अभिन्न गन्ता पुरुष यह अर्थ होता है उस तरह प्रकृत श्रुति में भी अभेदार्थक षष्ठी विभक्ति को क्यों नहीं माना जाय ?

उत्तर-एतादृश स्थल में अन्यथा निर्वाह नहीं होने से क्वचित् अभेदार्थक षष्ठी

मान लें पर जव षष्ठी का भेद अर्थ मानने पर भी संगत हो जाता है तथा श्रुति का निर्वाह भी हो जाता है तव षष्ठी का अभेद अर्थ मानना अनुचित है। एवं ज्ञान को नित्य मानने में स्मृति भी प्रमाण है-

"ज्ञानवैराग्यमैश्वर्यं धर्मश्च मनुजेश्वर ?
आत्मनो ब्रह्मभूतस्य नित्यमेतच्चतुष्टयम् ॥"
यथोदपानकरणात् क्रियते न जलांवरम् ।
सदेव नीयते व्यक्तिमसतः सम्भवः कुतः ॥
तथा हेयगुणध्वंसादवबोधादयो गुणाः ।
प्रकाशन्ते न जान्यन्ते नित्या एवात्मनो हि ते ॥ इति, ॥

अर्थात्-हे मनुजेश्वर ? ब्रह्मभाव को प्राप्त किया हुआ इस जीवात्मा का अर्थात् अविद्या कर्मादिक सकल हेयगुण को त्याग करके निर्मल स्वरूप प्राप्त इस जीव का ज्ञान, वैराग्य ऐश्वर्य, और धर्म ये चारों ही पदार्थ नित्य हैं उत्पाद विनाश रहित हैं। जिस तरह कूप तडाग प्रभृतिक उदपान जलाशय को बनाने से तदन्तर्गत आकाश नहीं बनाया जाता है किन्तु पृथिवी के अन्तर्गत जो जल है वही अभिव्यक्त होता है अर्थात् सत्य पदार्थ का ही आविर्भाव होता है। असत्य पदार्थ का आविर्भाव नहीं होता है। गीता में श्रीकृष्णजी ने भी कहा है-"**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः**" इति। उसी तरह कारण बल से हेयगुण कर्मादि पदार्थों का ध्वंस हो जाने पर नित्य जो ज्ञानादिक गुण समुदाय हैं वे सव प्रकाशित होते हैं किन्तु उत्पन्न नहीं होते हैं। जिस तरह तिल में अनागतावस्थ तेल विद्यमान रहता है तभी पुरुष व्यापार के द्वारा तिलों से तेल अभिव्यक्त होता है न तु सिकता-रेती से तेल का प्रादुर्भाव होता है तथा तिल में से तेल जनित नहीं होता है किन्तु अभिव्यक्त मात्र होता है। इसी तरह ज्ञानादिक नित्य गुण प्रतिबन्धकों का विनाश हो जाने पर आत्मा में अभिव्यक्त मात्र होता है किन्तु उत्पन्न नहीं होता है। इन उपर्युक्त श्रुति स्मृतियों से सिद्ध होता है कि- आत्मा का ज्ञानादिक गुण नित्य है जन्य नहीं।

श्रौतविशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में ज्ञान को द्रव्य माना गया है प्रदीप प्रभा के समान, परन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि न्याय सिद्धान्तवादी लोग तो रूपादि से लेकर के संस्कारान्त पदार्थों को गुण मानते हैं अर्थात् चौबीस गुण मानते हैं जिसके अन्तर्गत

ज्ञान भी एक गुण ही है तव ज्ञान द्रव्य किस तरह हो सकता है ? क्योंकि-
"अथ द्रव्याश्रिता ज्ञेया निर्गुणा निष्क्रियाः गुणाः"

ऐसा उन नैयैयिकों का कथन है यदि ज्ञान भी घटादिवत् द्रव्य होगा तव तो घट में रूपादिक गुण की तरह ज्ञान में भी रूपादि अन्यतम गुणों की उपलब्धि होनी चाहिये वह तो नहीं होता है अर्थात् ज्ञान में रूपादिक गुणों का उपलम्भ नहीं होता है ?

उत्तर-न्याय सिद्धान्तवादी क्रियाश्रयत्व गुणाश्रयत्व तथा द्रव्यसमवायिकारणत्व ये प्रत्येक द्रव्य को स्वतन्त्र लक्षण माने हैं तो संकोच विकाश रूप क्रिया ज्ञान में उपलब्ध होता है तथा संयोग विभाग पृथक्त्व परापरत्वादिक अन्यतम गुणों का ज्ञान में उपलम्भ होने से ज्ञान को द्रव्य माना जाता है। एवं अजड होने से ज्ञान को द्रव्य माना जाता है अजड कहते हैं स्वप्रकाश को तो ज्ञान स्वप्रकाश है इसलिये द्रव्य है क्रिया का आश्रय जो हो उसको द्रव्य कहते हैं ऐसा द्रव्य का लक्षण करने से क्रियाश्रयत्व तथा गुणाश्रयत्व यह प्रत्येक द्रव्यत्व का साधक सिद्ध होता है। तथा क्रियाश्रयत्व गुणाश्रयत्व के साथ-साथ अजडत्व का भी कथन होने से अजडत्व भी द्रव्यत्व का साधक सिद्ध होता है। अजडत्व हेतु वक्ष्यमान प्रकार से द्रव्यत्व के साधक होता है तथाहि, जो जड पदार्थ हैं घटादिक वे तो कोई द्रव्य कहलाते हैं जैसे मृत्पाषाणादिक जड हैं तो ये द्रव्य हैं मृत्तिका रूप तथा जड पदार्थ है आत्मा भिन्न जलादिक वे सव द्रव्य हैं, तथा जो जड वस्तु हैं उनमें कोई-कोई अद्रव्य भी होते हैं जिस तरह गुण कर्मादिक ये सव द्रव्य भिन्न हैं, परन्तु जो पदार्थ अजड पदार्थ होते हैं उनमें अद्रव्य नहीं होते हैं, यथा आत्मा अजड जड भिन्न वस्तु है तो आत्मा अद्रव्य नहीं है किन्तु सर्वानुमत से द्रव्य है इसलिये ज्ञानरूप जो पदार्थ है वह द्रव्य है क्योंकि अजड जड भिन्न होने से जिस तरह आत्मा अजड है तो वह द्रव्य रूप है इसी तरह ज्ञान भी अजड है तो वह भी द्रव्य ही है, यहाँ-**"ज्ञानम् द्रव्यम् अजडत्वात्, यदजडं भवति तद् द्रव्यं भवति यथा आत्मा"** इस अनुमान में ज्ञान है पक्ष द्रव्यत्व है साध्य अजडत्वात् है हेतु यदजडं तद् द्रव्यम् यह व्याप्ति स्वरूप का अभिनय है, आत्मा यह व्याप्ति ग्राहक दृष्टान्त प्रदर्शन परक वाक्य है। जिस तरह महानसरूप दृष्टान्त में वह्नि धूम की व्याप्ति का निश्चय करके गृहीत व्याप्तिक धूम से सन्दिग्ध पर्वत में धूम को देखकर व्याप्ति का स्मरण करने पर **"वह्निव्याप्य धूमवानयं पर्वतः"** इत्याकारक परामर्श से पर्वत में वह्नि का निश्चय होता है, इसी तरह आत्मारूप दृष्टान्त में द्रव्यत्व

अजडत्व की व्याप्ति निश्चय करके गृहीत व्याप्तिक अजडत्व हेतु से ज्ञानरूप पक्ष में अजडत्व ज्ञान के वाद द्रव्यत्व व्याप्य अजडत्ववान् ज्ञानम् इत्याकारक परामर्श के द्वारा ज्ञानरूप पक्ष में द्रव्यत्व की सिद्धि होती है इति तु न्यायविदां राजमार्गः । अत एव साम्प्रदायिक प्राचीनार्वाचीनाचार्यों ने भी कहा है कि यह ज्ञान अजड होने से संकोच विकाश रूप क्रिया का आश्रय होने से और संयोग विभागादिक गुणों का आश्रय होने से द्रव्य है, ऐसा सिद्ध होता है ।

प्रश्नः-यदि आप उपर्युक्त युक्ति तर्कादिकों के द्वारा ज्ञान में द्रव्यत्व को सिद्ध करते हैं तव आत्मारूप द्रव्य का ज्ञान गुण है यह प्रवाद किस तरह संगत होगा ? क्योंकि द्रव्यरूप जो घटादिक पदार्थ हैं वे किसी द्रव्यान्तर के गुण नहीं होते हैं द्रव्यत्व तथा गुणत्व में छाया प्रकाश के समान विरोध है सहानवस्थान का नाम ही तो विरोध है तव एक ज्ञान में द्रव्यत्व तथा गुणत्व नहीं रह सकता है तब ज्ञान को आत्मगुण कहना अनुचित जैसा प्रतीत होता है ?

उत्तर-ज्ञान नियमतः आत्मा में आश्रित है इसलिये आत्मा का गुण कहलाता है अर्थात् यावत् पर्यन्त उपलभ्यमान होता है तावत् पर्यन्त आत्मा में ही आश्रित रहता है ऐसा ही देखने में आता है इसलिये ज्ञान द्रव्य होता हुआ भी आत्मा का गुण कहलाता है किन्तु नैयायिक नयवत् गुणत्वाश्रय होने से गुण नहीं कहलाता है जिससे द्रव्य में गुणत्व कथन अयुक्त होता, प्रदीप प्रभा की तरह अर्थात् जिसतरह प्रदीप की प्रभा नियमतः प्रदीप में रहने के कारण प्रदीप का गुण है तथा संयोग विभागादिक गुण तथा गच्छति आगच्छति इत्यादि क्रिया के आश्रय होने से प्रविरल तेजो अवयवक द्रव्यरूप है उसी तरह प्रकृत में नित्य द्रव्याश्रित होने के कारण ज्ञान आत्मा का गुण है तथा गुण क्रिया का आश्रय होने से द्रव्य भी है । अर्थात् संकोचादिक क्रियावान् होने से एवं संयोग विभागादिक गुणवान् होने से ज्ञान द्रव्य कहलाता है तथा द्रव्य में नियमतः आश्रित होने से गुण भी कहलाता है । आश्रय में नियमतः रहता है, इसका अर्थ है कि द्रव्य के बिना नहीं रहता है तथा द्रव्य की सत्ता में ही रहता है अर्थात् द्रव्य समवेत है, द्रव्य के साथ अविष्वग्भाव सम्बन्ध से रहता है । अतः एक अपेक्षा से द्रव्यत्व भी है और अपेक्षान्तर से गुणत्व भी रहता है । जिस तरह द्रव्य जाति में सत्ता की अपेक्षा से अपरत्व रहता है तथा पृथिवीत्वादिक की अपेक्षा से परत्व रहता है तो आपेक्षित उभय धर्म के समावेश होने से एक ही द्रव्यत्व में परत्व अपरत्व उभय

धर्म के समावेश होने से तदुभय अविरुद्ध है उसी तरह ज्ञान में आपेक्षित द्रव्यत्व तथा आपेक्षिक गुणत्व के सद्भाव होने से ज्ञान में द्रव्यत्व तथा गुणत्व एतदुभय अविरुद्ध है। विशेष विवेचन अन्यत्र देखें। ग्रन्थ गौरवभय से यहाँ संक्षेप किया गया है।

प्रश्नः-यदि ज्ञान स्वप्रकाश है तब तो जिस तरह जागृत अवस्था में प्रकाशित होता है उसी तरह मूर्छा अवस्था में तथा सुषुप्तिकाल में भी प्रकाशित होन चाहिये स्वप्रकाशक होने से।

उत्तर-ज्ञान स्वप्रकाश है, इसका मतलब यह है कि-ज्ञान विषय ग्रहण समय में ही स्वयमेव प्रकाशित होता है न तु सर्वदा मूर्छा सुषुप्तिकाल में तो तमो गुण से अभिभूत होने के कारण से संकुचित रहता है अतः स्वयं प्रकाश नहीं हैं। जिस तरह सूर्यमणि प्रभृति का प्रकाश तिरोहित रहने से प्रकाशित नहीं होता है उसी तरह प्रकृत में भी जानिये।

जिस तरह ज्ञान नित्य द्रव्य तथा अजड स्वप्रकाशरूप है उसी तरह ज्ञान आनन्द सुखस्वरूप भी है, ज्ञान को प्रकाश काल में अनुकूल रूपसे प्रतिभा समानत्व ही आनन्दरूपत्व है अर्थात् प्रकाशकाल में स्वाश्रय के विषय के प्रकाशन समय में ही यह प्रकाशित होता है, उस अवस्था में तत्तत् विषयों के अनुकूलत्वेन भान होने से उन विषयों को विषय करनेवाले इस ज्ञानाश्रय को सुखरूपत्व होता है। नहीं कहें कि-तब तो विषादि दर्शन काल में विषादि विषय ज्ञान को प्रतिकूल नहीं होना चाहिये परन्तु विषादि ज्ञान में तो सव को प्रतिकूलत्व ही भासित होता है, सो कैसे होता है? यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि विषादि ज्ञान काल में जो विषादिक पदार्थों में प्रतिकूलत्व अवगत होता है उसका कारण है देहात्मभ्रमादिक, अर्थात् विषादि ज्ञान काल में जो विषादिक पदार्थ में दुःखरूपत्व का प्रतिभास होता है उसका कारण है बाधक ज्ञानमूलक देहात्मभ्रम तथा शुभाशुभ कर्म परमेश्वरात्मकत्त्वाभाव ज्ञान, अर्थात्- **"जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं च वसुधा तलम्"** अर्थात्-हे भगवन्? यह सम्पूर्ण जगत् आपका शरीर है-**"तानि सर्वाणि तद्वपुः"** परिदृश्यमान सकल पदार्थ भगवान् का शरीर है-**"हरेस्तनुः"** आकाशादिक सकल पदार्थ भगवान् का शरीर शेष है इत्यादि वचनों से सिद्ध होता है कि सकल पदार्थ भगवान् का शरीर है तो भगवत् शरीरतया ज्ञायमान काल में पदार्थ मात्र का अनुकूलरूपेण ज्ञान होने से सभी पदार्थों का अनुकूलत्व ही स्वभाव है, विषयादिक का भान समय में जो प्रतिकूलत्व अवगत होता

है वह देहात्मभ्रम मूलक औपाधिक है। अर्थात् चेतनाचेतनात्मक घट पट अनुकूल प्रतिकूल पदार्थ मात्र को भगवान् का शरीर है ऐसा कहने से परमेश्वरात्मकरूप से प्रतिभासमानता समय में सभी पदार्थ का अनुकूलरूप से ही ज्ञान होता है क्योंकि जब भगवान् सव के ईप्सिततम होने से सर्वदा अनुकूल रूपसे ही प्रतिभासित होते हैं तब भगवान् का शेष भगवान् के साथ अविष्वग् रूपसे प्रतिभासित पदार्थ मात्र का अनुकूलत्व रूप ही स्वभाव है। तब कुत्रचित् कदाचित् किसी विषादिक में जो प्रतिकूलता का प्रतिभास होता है वह देह में आत्मभ्रम मूलक औपाधिक ही है। जिस तरह आकाश स्वभाव से एक व्यापक निर्मल स्वभाव वाला है परन्तु घट पट तथा पार्थिवमलादि रूप उपाधि से युक्त हो जाने पर यह घटाकाश है यह मठाकाश है इत्यादि रूपसे आकाश में अनेकत्व व्यवहार घटादि उपाधि कृत है तथा घटरूप उपाधि को परिच्छिन्न होने से तत्सम्बन्धात् आकाश में अर्थात् घटाकाश में परिच्छिन्नत्व का औपाधिक व्यवहार हो जाता है, तथा पार्थिव रज: कर्णादि रूप उपाधि से उपहित होने पर-"आकाश मलिन है" यह व्यवहार-औपाधिक है। यथा वा-"**आत्माज्ञान मयोऽमल:**" आत्मा ज्ञानमय है तथा सर्वमल रहित है इस वचन से स्वभावत: सर्व उपाधि रहित होने पर भी अनादि कालिक अविद्यात्मक उपाधि के सम्बन्ध से देवमनुष्यादि रूपसे व्यवहृत होता है तो यह यथोक्त व्यवहार औपाधिक है उसी तरह प्रकृत में भगवदात्मकतया पदार्थ मात्र में आनुकूल्य स्वाभाविक है विशेष में जो प्रतिकूलत्व है वह औपाधिक है।

प्रश्न-आपने कहा कि ईश्वरात्मकतया प्रत्येक पदार्थ में अनुकूलता स्वभाविक है प्रतिकूलता का प्रतिभास औपाधिक है यह कहना तो ठीक नहीं है क्योंकि चन्दन कुसुम माला वनितादिक पदार्थ में भी तो अनुकूलता स्वभाविक ही है क्योंकि चन्दन वनितादिक प्रत्येक प्राणी के लिये सुखद है। ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि यदि परमेश्वरात्मकत्व प्रयुक्त जो अनुकूलता तादृश अनुकूलता से अतिरिक्त चन्दन वनितादि पदार्थों में भासमान जो आनुकूल्य वह चन्दनादि पदार्थों का स्वाभाविक आनुकूल्य मानें तब तो किसी भोक्ता को काल विशेष में तथा किसी देश विशेष में जो पदार्थ अनुकूल लगता है वही पदार्थ उसी पुरुष को देशान्तर कालान्तर में प्रतिकूल नहीं होना चाहिये क्योंकि उसमें अनुकूलता स्वभाविक है तब वह प्रतिकूल कैसे होगा? तथा जिस देश जिस काल में जिसको जो पदार्थ सुखद प्रतिभासित होता है वही पदार्थ

उसी देश उसी काल में अन्य व्यक्ति को सुखद प्रतीत नहीं होता है किन्तु दुःखद प्रतीत होता है, जैसे ऊँट को बबूल का कण्टक नीम का पत्ता खाने में अच्छा लगता है परन्तु तदतिरिक्त को अच्छा नहीं लहतां है, यथावा निरोग व्यक्ति को धृताक्त भोजन परम प्रिय लगता है। परन्तु वही भोजन ज्वराक्रान्त को अच्छा नहीं लगता है। इसलिये चन्दन वनितादिक पदार्थों में भगवदात्मकत्व व्यतिरेकेण अनुकूलता स्वाभाविक है, यह कथन ठीक नहीं है किन्तु पदार्थ मात्र भगवान् के शरीर होने से भगवदात्मक है और भगवदात्मक होने से उन पदार्थों में अनुकूलत्व प्रतिभासमान होने से उन पदार्थों में जो अनुकूलत्व है वह उन पदार्थों का स्वाभाविक है, और भगवदात्मकतया प्रतिभासमान काल में जो प्रतिकूलता का भान होता है वह देहात्मभ्रम मूलक तथा परमेश्वरात्मकत्वाभाव मूलक औपाधिक है।

इस विषय में भगवान् श्रीपराशरजी का वचन भी प्रमाण है तथाहि-

"वस्त्वेकमेवदुःखाय सुखायेर्ष्यागमाय च।

कोपाय च ततस्तस्मादस्तु वस्त्वात्मकं कृतः॥

तदेव प्रीतये भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते।

तदेव कोपाय ततः प्रसादाय च जायते॥

तस्माद् दुःखात्मकं नास्ति न च किंचित्सुखात्मकम्। अर्थात्-एक ही पदार्थ जो सांसारिक है वह देश काल विशेष में दुःख के लिये होता है और वही पदार्थ देशान्तर कालान्तर में उसी पुरुष को सुख के लिये होता है एवं उसी देशकाल विशेष में व्यक्त्यन्तर को सुख प्रयोजक होता है एवं वहीं पदार्थ चाहने वाले को भाग्य बलात् प्राप्त नहीं होने पर ईर्ष्या का कारण बन जाता है तथा वही पदार्थ क्रोध के लिये बन जाता है। इसलिये सुखादिक वस्तु पदार्थ का स्वरूप नहीं हो सकता है, तथा पदार्थ सुख का प्रयोजक बन करके पुनः देश कालादि के बल से दुःख का प्रयोजक बन जाता है। तस्मात् कोई भी पदार्थ न तो एकान्ततः दुःखात्मक है न वा एकान्ततः सुखात्मक है। इसप्रकार से श्रीपराशर ऋषिजी ने विस्तार पूर्वक कहा है। इससे एक ही पदार्थ सुखात्मक है सत्वगुण के उत्कट काल में तथा वही पदार्थ रजो गुण के उत्कट काल में दुःखात्मक हो जाता है तथा वही पदार्थ तमो गुण के आधिक्य के

समय में मोहात्मक होता है यह सांख्य मत का निराकरण किया गया, क्योंकि विषय पदार्थों का प्रतिकूलरूप से तथा चन्दनादि पदार्थों का अनुकूलरूप से जो भाव होता है वह देहात्मभ्रमादि कारण से तस्मात् परमेश्वरात्मकतया सर्व पदार्थों का आनुकूल्य स्वभाव है। अतः ईश्वराकार से भान काल में सर्व विषयक ज्ञान आनन्दरूप है यह सिद्ध हुआ। एतादृश ज्ञान आत्मा का गुण है। इसप्रकार से तत्वत्रयान्तर्गत द्वितीय चित्पदार्थ का निरूपण यथामति संक्षेप से किया गया ॥७॥

॥ अथेश्वरनिरूपणम् ॥

विश्वं जातं यतोद्धा यदवितमखिलं लीयते यत्र चान्ते
सूर्यो यत्तेजसेन्दुः सकलमविरतं भासयत्येतदेषः।
यद्भीत्यावातिवातोऽवनिरपि सुतलं याति नैवेश्वरोज्ञः
साक्षी कूटस्थ एको बहुशुभगुणवानव्ययो विश्वभर्ता ॥८॥

पूर्वोक्त षष्ठ तथा सप्तम श्लोकरूप दो श्लोकों से तत्त्वत्रय के अन्तर्गत चित् स्थूलसूक्ष्म साधारण चेतन वर्ग अर्थात् बद्धमुक्त तथा नित्यसूरि साधारण जीववर्ग का तथा अचित् जडतत्व प्रकृति महदकंकारादिक स्थूलसूक्ष्म का यथावत् प्रतिपादन करके श्रुतिस्मृति पुराण तथा इतिहास से प्रतिपाद्य सारभूत त्रिरूपात्मक अर्थात् चिदचिद्विशिष्ट तत्त्वशेखर सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञ सर्वजगत् कारण सर्वशेषी सर्वेश्वर श्रीसीतापति के स्वरूप तथा गुण के निर्वचन द्वारा निर्वचन करके चिदचिद्विशिष्ट परमेश्वर मुक्त प्राप्य तथा नित्यसूरियों से सर्वदा दर्शन के योग्य परतत्त्व का उपदेश करने के लिए उपक्रम करते हैं-"**विश्वं जातं यतोऽद्धा**" इत्यादि अष्टम तथा नवम श्लोक से।

स्थूल सूक्ष्म साधारण जङ्गमात्मक सकल जायमान विश्व सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी महापुरुष श्रीरामजी से सर्ग के आदि काल में उत्पन्न होता है। अर्थात् सर्गादि काल में जिससे आविर्भूत होता है। जिस तरह तिलों से तेल का आविर्भाव होता है। और उत्पन्न होने के वाद जिस परतत्त्व में अवस्थित रहता है। अर्थात् स्थिति मध्यकाल में जिससे पालित-पोषित होता हुआ सर्वदा रक्षित रहता है।

एवं आविर्भूत तथा रक्षित जगत् संहार काल में जिस परम तत्त्व में प्रलीयमान हो जाता है। एतादृश जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण जो है वही परम तत्त्व श्रीरामजी का लक्षण है। और जिस परमात्मा के प्रकाश से प्रकाशित होकर के

दिनमणि सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र तथा अग्निदेव, इस जगत् को प्रकाशित करते रहते हैं। तथा जिसके भय से भयभीत होकर के अत्यन्त वेगवान् वायुदेव दिनरात चलते ही रहते हैं। कभी भी अपने कार्य में आलस्य नहीं करते हैं। तथा जिससे विधारित रहने के कारण पृथिवी स्वकीय स्थान को छोड करके रसातल में प्रविष्ट नहीं हो जाती है।

और जो परमेश्वर सदा सर्वत्र पर्वत के समान अचल होकर के स्थिर है। अत एव समस्त स्थावर जङ्गमात्मक जगत् का साक्षी अर्थात् द्रष्टा हैं। और चित् अचित् तथा चिदचिद्विशिष्ट-इन तीनों तत्त्वों में प्रधान है तथा सर्वज्ञत्व शरणागत वत्सलता प्रभृति अनन्त कल्याण गुणों से सर्वदा युक्त रहते हैं। तथा जो जन्म-मरणादि विकारों से रहित होकर के सम्पूर्ण जगत् का भरणपोषण कर्त्ता है। और जनकजा रूप श्री से सम्बद्ध हैं। तथा जगदुत्पादक तथा जगत् संहारक एवं जग पालक ब्रह्मा रुद्र विष्णु प्रभृतिक देवों से आराधित रहते हैं। और शरण में आये हुए व्यक्तियों का भेदभाव के बिना रक्षण करने में सदा तत्पर रहते हैं। और जिस करुणा निधान के चरणकमल की परम प्रेमारूप भक्तिवाले पुरुष विशेष ही प्राप्त करते हैं। अर्थात् भगवत् प्राप्ति का साधन केवल शुष्क ज्ञान नहीं है। न वा केवल कर्म है। किन्तु ज्ञानकर्म समुचित भक्तियोग सहकृत प्रपत्ति मात्र है। इस बात को अभिव्यक्त किया गया। और भगवान् क्लेशकर्म विपाक और आशयों से अमरामृष्ट है। अत एव महानुभाव भगवान् के यश को श्रीवाल्मीकि प्रभृति महामुनियों के द्वारा लोक में उदीरित है।

और जो ज्ञानी श्रेष्ठ नित्यसूरि हनुमान् प्रभृतिक महाज्ञानियों के ध्यान का कर्म है अर्थात् ध्यान का विषय होते हैं। योगियों से ध्येय है। तथा जो भगवान् अजन्मा जन्मरूप भाव विकार से रहित है। (दशरथादिकों के कुलों में प्राकृत मनुष्य के समान आद्य क्षण सम्बन्ध जन्म नहीं हुआ है) किन्तु भक्तानुग्रह के लिये आविर्भाव हुआ है। अत एव भक्त प्रवर श्रीतुलसीदासजी ने कहा है-"रोदन **तब** ठाना" इत्यादि। और जिसका जन्म होता है उसका मरण अवश्यं भावी है→

"मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते।
अद्य वाद्बशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः"

इस प्रमाण से सिद्ध होता है कि जन्मशील का मरण अवश्यं भावी है। तथा, **"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः"** यह भी प्रमाण है कि जन्मवान् का मरण होता ही है।

परन्तु महर्षि श्रीवाल्मीकिजी ने श्रीमद्रामायण में कहा है कि-**"विवेष वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः"** (अपने छोटे भाईयों तथा शरीर के साथ-साथ वैष्णव तेज दिव्यधाम श्रीसाकेत में प्रवेश करगये.।) इस प्रमाण से सिद्ध होता है कि परमेश्वर का मरण नहीं होता है। तब मरण व्याप्त जन्म भी भगवान् का नहीं होता है किन्तु स्वेच्छा से भगवान् का प्रादुर्भाव मात्र होता है। अर्थात् भगवान् का अभिव्यक्त होना ही जन्म कहलाता है।

अत एव मरण रहित होने से जन्म रहित भी हैं। एतावता भगवान् में जन्म मरण एतदुभय राहित्य सूचित किया गया। अर्थात् न तो भगवान् प्राकृत पुरुष की तरह अदृष्टादि रूप कारणों से उत्पन्न होते हैं। न वा प्राकृत पदार्थों की तरह आयु समाप्त होने पर अथवा प्रलय काल में विनष्ट होते हैं। क्योंकि भगवान् कर्माधीन नहीं हैं न वा उनका शरीर कर्माधीन है। न वा प्राकृत हैं। किन्तु अप्राकृतिक लोकोत्तर निर्मल ज्ञानानन्द स्वभावक है। भगवान् का वह तादृश शरीर देशकाल तथा वस्तु परिच्छेद रहित होने से उत्पाद विनाशशील नहीं है। अपितु नित्य है। इसलिये भगवान् का जन्म तथा मरण नहीं होता है। वह सर्वदा अविनाशी अजन्मा है।

तथा जिस परमेश्वर श्रीसीतानाथजी के माहात्म्य महत्व का समस्त वेदराशि अर्थात् अंगोपांग पुराणादि सहित वेद समुदाय अनुक्षणगान करते आये हैं। तथा अभी भी गान करते हैं और यावत् काल की सत्ता है तब तक भविष्य काल में भी गान करते रहेंगे। तथा जिस परमेश्वर जगत् कारण सर्वेश्वर श्रीरामजी के अनन्त समाभ्यधिक विवर्जित ज्ञानादिक स्वाभाविक शक्ति तथा ज्ञान बल वीर्य भी स्वाभाविक हैं।

तथा जो भगवान् जरा वृद्धावस्था तथा पाप कर्म कुत्सित शास्त्र प्रतिषिद्ध कर्मों से रहित हैं-सर्वथा विवर्जित हैं। ब्रह्मादि देवों के भी मन तथा वाणी का अविषय है। क्योंकि **"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह"** इत्यादि श्रुति समुदाय कहती है कि **परमेश्वर मन वाणी** के व्यापार का विषय नहीं होता है। इससे सिद्ध होता है **कि परमेश्वर** वाङ् मनसातीत है। ऐसा जो पुरुष विशेष है जो कि सकल वसुधाधिप होने पर भी अयोध्याधिपति हैं, वही भगवान् श्रीसीतारामजी सकल जगत् का कारण सर्व नियामक सर्वशेषी परमेश्वर हैं। इसप्रकार से भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी ने श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी को परम तत्त्व-ज्ञेय ध्येय तथा प्राप्य के स्वरूप का निर्वचन करके समझाया। ऐसा इन दोनों ८ एवं ९ वें श्लोकों का अन्वयार्थ हुआ।

इसके पूर्व में तत्त्वत्रयान्तर्गत चित् तथा अचेतन जीव प्रकृति रूप दो तत्त्वों का निरूपण किया गया है। इसके वाद जडचेतन का धारक सर्व नियामक सर्वशेषी सर्वज्ञत्व सर्वशक्तित्वादिक सकल कल्याण गुणों का आकर समाभ्यधिक विवर्जित सकल शास्त्र विहित कर्म के द्वारा आराध्य सकल कर्मफल प्रदाता योगि गम्य तथा ज्ञेय मुक्त प्राप्य समस्त वेदान्तगम्य पुरुषोत्तम मर्यादा सागर तत्त्वत्रयों में तत्त्वशेखर ईश्वर तत्व भगवान् श्रीसीतापति रूप परमेश्वर श्रीरामजी का निरूपण के लिए उपक्रम करते है **"विश्वं जातं यतोऽद्धा"** इत्यादि श्लोक द्वय से।

जिस सर्वशक्ति सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी सर्वशेषी भगवान् श्रीसीतारामजी से यह परिदृश्यमान स्थूल जडचेतन जगत् प्रलयावसान काल में भगवान् से पालित होता है तथा अबसान में अर्थात् प्रलयकाल में जिस परमात्मा में लीन हो जाता है, वही परमेश्वर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं। इस श्लोक के प्रथम चरण से आनन्दभाष्यकारजी ने ईश्वर में जगत्कारणता का प्रदर्शन कराया है। कारण दो प्रकार का होता है निमित्त कारण तथा उपादान कारण–उसमें से चैतन्य मूलक निमित्त कारण अर्थात् कर्तृत्व ईश्वर में बतलाया तथा सर्वशरीरक भगवान् में, उत्पत्ति स्थिति एवं प्रलय भगवान् से होता है यह कह करके उपादान कारणत्व का सूचन किया है। क्योंकिं घटादि कार्यों का उत्पाद स्थिति और विनाश ये तीनों उपादान कारण मृत्तिका में ही होता है। केवल पदार्थों का उत्पादन तो कर्ता कारण तथा सहकारी कारण से भी होता है। जैसे घटादि का उत्पादन कुलाल तथा दण्डादि सहकारी से भी होता है। परन्तु उत्पाद स्थिति विनाश तो उपादान कारण से ही होता है। ऐसा ही लोक में देखा जाता है। न तु मृत्तिका से घट का उत्पाद हो, मृदतिरिक्त में घट का अवस्थान हो तथा मृदतिरिक्त जलादिक में प्रलीयमान होता हो। किन्तु मृत्तिका ही में उत्पादादिक सव होता है। इसलिये उत्पादस्थित्यादिक मृत्तिका ही में होने से मृत्तिका घट का उपादान सिद्ध होता है। इसी तरह जगत् का उत्पाद स्थिति विनाश जिस से होता है वही परमेश्वर है। ऐसा कहकर जगदाचार्यजी ने बतलाया कि श्रीरामजी से ही जगत् का उत्पाद स्थिति तथा विनाश होता है।

इस विषय का समर्थन श्रुति भी करती है, **"सदेव सोम्येदमग्रे आसीदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" "आत्मा वा इदमेकमग्रे आसीन्नान्यत् किंचनमिषत्"** (यह परिदृश्यमान जगत् उत्पत्ति के पूर्व एक अद्वितीय सजातीय विजातीय रहित ब्रह्म रूप

ही था। उत्पत्ति के पूर्व में समाभ्यधिक विवर्जित आत्मा मात्र था। तदतिरिक्त अर्थात् भगवत् शरीर व्यतिरिक्त क्रियाशील कोई भी पदार्थ नहीं था।) इत्यादि श्रुतियों से सर्ग पूर्व में सत् आत्मादि पदों के द्वारा सदाद्यात्मक ईश्वर सत्ता का प्रतिपादन करके पुनः श्रुति कहती है, **"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म"** (जिस सर्वशक्ति समन्वित सदात्मक सर्वशेषी परमेश्वर रूप कारण से प्रलयावस्था में प्रसुप्त के समान यह परिदृश्यमान जगत् जायमान होता है। अर्थात् रात्रि में नीड निविष्ट पक्षीगण जिस तरह रात्रि के व्यतीत हो जाने पर प्रभात समय में नीड़ से अभिव्यक्त होते हैं। यथावा तिलों से जिस तरह तेल कारक व्यापार से अभिव्यक्त होता है। उसी तरह यह जगत् जिससे सर्गावस्था में क्रमिक अभिव्यक्त होता है तथा अभिव्यक्त होकर के स्थिति अवस्था में जिससे पालित पोषित होता है, एवं संहारावस्था में जिसमें विनष्ट हो जाता है अर्थात् तिरोहित हो जाता है, यह जगत् वही ब्रह्म स्वरूप है। तादृश जगत् कारणीभूत ईश्वर की जिज्ञासा करो ऐसा इन उपर्युक्त श्रुतियों से सिद्ध होता है।

इस विषय का स्मृत्यादिक ग्रन्थों से भी स्पष्टीकरण होता है। तथाहि-

"यतः सर्वाणि भूतीनि भवन्त्यादि युगागमे।
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये॥"

"यतः सर्वाणि भूतानि प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्रागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके" इति।

अर्थात् आदि युग-सर्ग के आदि काल में जिस सर्वशक्ति समन्वित परमात्मा से ये सवभूत अर्थात् जडचेतन साधारण सकल स्थूल पदार्थ आविर्भूत होते हैं-इन सव पदार्थों का आविर्भाव होता है। तथा पुनः कल्प के विराम काल में जिस परमात्म तत्व में प्रलय-तिरोभाव को प्राप्त कर जाते हैं वह ईश्वर है। दिन के प्रारम्भ काल में सभी भूत जिस परमेश्वर से अभिव्यक्त होते हैं। रात्र्यागम-कल्पक्षय काल में जिसमें तिरोभूत हो जाते हैं, वह परमेश्वर हैं। इन स्मृतियों से सिद्ध होता है कि भूतों का उत्पाद विनाश तथा पालन परमात्मा से हो जाता है। इस बात को प्रथम चरण से बतलाया है।

"सूर्योयत्तेजसेन्दुः सकलमविरतं भासयत्येतदेषः"

सूर्य तथा चन्द्रमा ग्रहनक्षत्रादिक तैजस पदार्थ जिस भगवान् के प्रकाश से प्रकाशित होकर के इस जगत् को प्रकाशित करते हैं अर्थात् सूर्यादिक देव भगवान् के प्रकाश से स्वयं प्रकाशित होकर के तब अपने-अपने प्रकाशों से सूर्यादिक देवों चराचर सकल जगत् को प्रकाशित करते हैं। न तु सूर्यादिकों में पर प्रकाशकत्व सामर्थ्य स्वाभाविक है किन्तु परोपाधिक हैं। एतादृश तत्त्व ही सर्वेश्वर श्रीरामजी हैं।

परमेश्वर से प्रकाशित होकर के सूर्यादिक जगत् को प्रकाशित करते हैं इस विषय का पुष्टीकरण श्रुति करती है→ "**न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतोभांति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभातिसर्वं तस्य भासा जगदिदं विभाति।**"

अर्थात् तत्र उस परमात्मा में सूर्य प्रकाशित नहीं होते हैं। अर्थात् सूर्य के प्रकाश से परमात्मा प्राकाशित नहीं होते हैं। तथा चन्द्रमा और तारागण भी अपने-अपने प्रकाश से परमात्मा को प्रकाशित नहीं कर सकते हैं। तथा विद्युत के प्रकाश से भी परमात्मा का प्रकाश नहीं होता है। ये जो भौम काष्ठादिगत अग्नि है इसकी तो गणना ही क्या है। किन्तु उस परमात्मा के प्रकाशित होने पर ही सभी पदार्थ सूर्यादिक अनुभासित होते हैं। परमात्मा के प्रकाश से ही सारी दुनिया प्रकाशित होती है। अर्थात् प्रकाशरूप धर्म परमात्मा में ही है। तदितर सूर्यादिक में जो देखने में आता है वह परमात्मा की कृपा से ही प्राप्त हुआ है। इसलिये सूर्यादिक के प्रकाश से परमात्मा प्रकाशित नहीं होते हैं। किन्तु परमात्मा के प्रकाश से सव प्रकाशित होते हैं। इसलिए आचार्य श्री ने कहा कि- "**सूर्योयत्तेजसेन्दुः**" इत्यादि।

इसी प्रकार स्मृति भी कहती है कि परमात्मा के प्रकाश का आश्रय लेकर ही सूर्यादिक प्रकाशक कहलाते हैं। तथाहि-

"**यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।**
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥" इति॥

आदित्य सूर्य में रहनेवाला जो प्रकाश सकल जगत् को प्रकाशित करती है। तथा चन्द्रमा में, विद्युत में और अग्नि में रहनेवाला जो प्रकाश समस्त जगत् स्थित पदार्थ को प्रकाशित करता है हे अर्जुन ? वह विलक्षण प्रकाश मेरा ही है अर्थात् वह प्रकाश परमात्मा का प्रकाश है। पर आदित्य चन्द्रमा प्रभृति का नहीं है। एतादृश गुणगण विशिष्ट जो है वह परमात्मा श्रीराम तत्त्व है। यही ब्रह्म का लक्षण है।

इतना ही नहीं कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी जगत् का कारण हैं तथा सर्व प्रकाशक हैं किन्तु स्व स्व अधिकारों में परमात्मा से नियुक्त जो वायु इन्द्रादिक आधिकारिक पुरुष हैं वे सव जिसके भय से भयभीत होकर के अपने-अपने अधिकार कार्य में सर्वदा संलग्न रहते हैं। इस बात को आनन्दभाष्यकारजी कहतेहैं-"**यद्भीत्या वाति वातः**" इत्यादि। जिस परमात्म के भय से स्वकीय अधिकार में नियुक्त वायुदेव जो कि जगत् के आयु रूप हैं ऐसा कहा है। इस रीति से सम्पूर्ण जगत् के प्राण रूप परमपुरुष वायुदेव देवमनुष्यतिर्यक् प्रभृतिक प्राणी समूह में श्वासोच्छास रूपसे संचरित होते रहते हैं। यह वायु दो प्रकार का होता है-वाह्य तथा आभ्यन्तर। इसमें शरीराभ्यन्तर संचरणशील वायु को प्राण कहते हैं। तथा बाहर में संचरणशील वायु प्रकम्पन महावात प्रभृतिक नाम से प्रथित होता है। इसप्रकार के ये वायु जिसके भय से अतन्द्रित होकर के अपना कार्य करते हैं। श्रुति भी कहती है-

"भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपतिसूर्यः,

भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः"

अर्थात् सकल जगत् का जो नियामक है परमेश्वर ब्रह्माख्य श्रीरामजी उनके भय से अग्निदेव स्वकीय तपन क्रिया में संलग्न रहते हैं। तथा उस परमेश्वर के भय से भयभीत होकर के सूर्य तपन प्रकाशन कार्य करते हैं। तथा उस परमेश्वर के भय से ही इन्द्र वर्षणाधिपति वर्षण कार्य को तथा वायु स्वकीय कार्य में संलग्न रहते हैं। और क्या ? यह जो मृत्यु यमराज है जो कि प्रजामात्र का संहार कारक है वह भी जिसके भय से भयभीत होकर के स्वकीय अधिकार प्राप्त संहार कार्य में सर्वदैव संलग्न रहता है उस कार्य में थोडा भी आलस्य नहीं करता है।

इस श्रुति प्रतिपादित अर्थ को बतलाते हुए जगदाचार्य श्री ने कहा-

"यद्भीत्यावातिवातः" इति। एवं "अवनिरपि सुतलं याति नैवेति"

जिस परमात्मा के भय से डरकर के पृथिवी सर्व जडचेतन का आधार रूपास्थिरा पृथिवी सुतल-रसातल में प्रवेश नहीं करती है। अथवा जिस परमेश्वर से अधिष्ठित-धारित होने के कारण पृथिवी स्वस्थान से विचलित होकर के रसातल में प्रवेश नहीं करती है। श्रुति कहती है-

"एतस्याक्षरस्य प्रशासने द्यावा पृथिवी विधृते तिष्ठतः"

अर्थात् इस अक्षर महापुरुष के प्रशासन में व्यवस्थित द्यु पृथिव्यादिक यथा स्थान में आधारित रहते हैं। स्वस्थान से कभी भी विचलित होते नहीं हैं। ईससे ईश्वर में सर्वधारकत्व का कथन किया गया है।

एतादृश गुण विशिष्ट परमेश्वर पुनः किस प्रकार के हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं। "**ज्ञः**" एतादृश परमेश्वर पुनः 'ज्ञ' रूप है। अर्थात् त्रिकालस्थित सभी जडचेतन पदार्थ को जाननेवाला जो ज्ञान स्व प्रकाश है तादृश ज्ञान स्वरूप तथा तादृश ज्ञान का अधिकरण हैं। इसलिये ज्ञाता सर्वज्ञ सर्ववित् है। श्रुति कहती है, "**यः सर्वज्ञ स सर्ववित्**" जो पुरुष विशेष सर्व जडचेतन पदार्थ को द्रव्यत्वादि सामान्य रूपसे जानता है तथा जो सकल पदार्थ को विशेष रूपसे तत्तद्व्यक्तित्व रूपसे जानता है। देशकाल तत्तद्गुण तत्तत्स्वरूप से जानता है तथा जगद् व्यापार में सर्वथा शक्तिमान् है वहीं परमेश्वर श्रीरामजी हैं।

पुनः जो सर्वसाक्षी है। अर्थात् भव परम्परा से सम्पादित जो अग्नि होत्रादिक वेद विहित कर्म तादृश कर्म फल के भोक्ता जो जीव समुदाय उन जीवों का जो शुभाशुभ कर्म है तादृश कर्म का, इस शुभाशुभ कर्म को पूर्व प्रमाणान्तरागम्य कहते हैं। तथा वह कर्म अतीन्द्रिय है। इसलिए एतादृश कर्म को कोई प्रमाणान्तर से नहीं जाना जाता है। किन्तु ईश्वर मात्र उसको देखते हैं। इसलिए ईश्वर सर्व कर्मफल का द्रष्टासाक्षी कहलाते हैं। श्रुति भी इस विषय को लेकर के कहती है→

"साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च" इति।

अर्थात् सर्व जगत् का कारण सर्वशक्तिमान् परमेश्वर साक्षी है। अर्थात् स्वकीय कर्मफल के भोक्ता जीवराशि का जो फलजनक कर्म शुभाशुभ रूप अतीन्द्रिय प्रमाणान्तरागम्य है तादृश जीव कर्म को सदा देखनेवाले हैं।

तथा परमेश्वर चेता ज्ञान रूप है। तथा **केवल**-मलरहित ज्ञानानन्द रूप है। क्योंकि-"**ज्ञानानन्दमयोऽमलः**" इत्यादि वचन के बल से मलरहित ज्ञानानन्दात्मकत्व सिद्ध होता है तथा परमेश्वर केवल है अर्थात् प्राकृतिक सर्व विकार रहित होने से केवल कहलाते हैं। और "**निर्गुणश्च**" निर्गुण हैं अर्थात् "**नेति नेति**" "**अस्थूलमनणुः**" इत्यादि श्रुति सिद्ध प्राकृतिक विकारी सकल गुण से रहित होने से निर्गुण कहलाते हैं। न तु असंख्येय श्रुति प्रतिपादित अनन्त सल्याण गुण रहित हैं। अन्यथा गुणवत्व प्रतिपादक श्रुति विरोध होगा। इस श्रुति घटक, "निर्गुण" विशेषण का यथार्थ रूपसे

अर्थ न समझ करके अनेक पण्डितमम्यवादि ईश्वर को निराकार मान करके साकारवाद का निराकरण प्रयत्न से पथभ्रष्ट हो गये भक्ति-प्रपत्ति रहित हो जाने से। प्रकृत शब्द की व्याख्या आचार्य चरण ने ऐसा ही किया है-

"निर्गता निकृष्टाः सत्वादयः प्राकृता गुणा यस्मात्तन्निर्गुणमिति व्युत्पत्तेर्निकृष्टगुणराहित्यमेव निर्गुणत्वम्" (आनन्दभाष्य १/१/२)

तथा **"कूटस्थः"** इति। वह जगत्कारण परमेश्वर कूटस्थ है। कूट नाम है पत्थर के खण्ड का अथवा अयोघन का। उसकी तरह सर्वदा एक रूप से अवस्थित रहता हो। जिस तरह प्रस्तर खण्ड पर पानी पडे, कि सूर्यनारायण का प्रखर किरण पडे तथापि उस प्रस्तर खण्ड में किसी प्रकार का विकार नहीं होता है। उसी तरह परमेश्वर सर्वदा सुखदुःखादि रूप विकार से रहित होने के कारण कूटस्थ कहलाते हैं।

(सुखदुःखाद्युपाधिसंभेदरहित इति।)

तथा **"एकः"** परमेश्वर एक है। न तु जड तथा जीव के समान अनेक अनन्त है। क्योंकि ईश्वर में अनेकता न लोक सिद्ध है न वा शास्त्र सिद्ध है। अथवा एक है अद्वितीय है, सजातीय द्वितीय रहित है अथवा द्वितीय शब्द का अर्थ होता है सहायक, "असिद्वितीयोनुससारपाण्डवम्" यहाँ द्वितीय शब्द सहायक वाची है। तो ईश्वर अद्वितीय सर्व सहायक रहित है। स्वयमेव सर्व सहाय रूप है। समाभ्यधिक विवर्जित है।

"वहु शुभगुणवानिति" तथा सर्वेश्वर वह श्रीरामजी अनेक शरणागत वत्सलत्वादिक रूप जो कल्याण शुभगुण हैं तादृशानन्त कल्याण गुणवान् हैं। अनन्त कल्याण गुणवान् कथन से हेय सकलगुण रहितत्व अभिव्यंज़ित होता है। तथा वह अव्यय है। सर्व प्रकारक विनाश रहित है। न तो गुण द्वारा इनका विनाश होता है न वा घटादिवत् स्वरूप से विनाश होता है।

"अजोपिसन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपिसन्"

इत्यादि स्मृतियों में अव्ययत्व-अविनाशित्व का प्रतिपादन किया गया है। **"विश्वभर्ता"** इति। यह परमात्मा समस्त चराचर जगत् का भर्ता स्वामी है। भरणपोषण करनेवाले हैं अर्थात् उत्पन्न इस जगत् का स्थिति कालमें रक्षक पालक है। भक्त के ऊपर आनेवाली आपद से रक्षण करते हुए पालक हैं ॥८॥

श्रीमानर्च्यः शरण्यो बहुविधविवुधैर्योगिगम्याङ्घ्रिपद्मो
ऽपृश्यःक्लेशादिभिःसत्समुदितसुयशाः सूरिमान्यो वदान्यः ॥
शश्वच्छ्रीरामचन्द्रः सुमहितमहिमा साधुवेदैरशेषै
र्निर्मृत्युःसर्वशक्तिर्विकलुषविजरोगीर्मनोभ्यामगम्यः ॥९॥

"**श्रीमानर्च्यः**" इत्यादि । वह परमेश्वर श्रीरामजी श्रीमान् हैं अर्थात् लीलाविभूति, भोगविभूति तथा नित्यविभूति रूप जो श्री, तादृश श्री से नित्य युक्त हैं। श्रीमान् में नित्य योगार्थक मतुप् प्रत्यय है अर्थात् इन विभूतित्रय से भगवान् सर्वदा युक्त रहते हैं। न तु लौकिक श्रीमान् की तरह अव्याप्य वृत्ति श्रीमान् हैं, अर्थात् कभी श्री युक्त रहते हैं, कभी नहीं ऐसा नहीं किन्तु सर्वदा श्री समेत ही रहते हैं। अथवा विदेहजा रूप श्री से सर्वदा संयुक्त हैं।

"**अनन्याराघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा**" इत्यादि श्रीमद्रामायण वचन प्रामाण्य से श्री सीतालक्षण श्री से सर्वदा युक्त हैं। अथवा शोभारूप श्री से युक्त हैं। अथवा धनधान्यादिक श्री से सर्वदा सम्मिलित हैं।

"**भगवान् रामचन्द्रोऽर्च्यः पूजनीयः**" वे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अर्च्य हैं। अर्चन पूजन करने के योग्य हैं। अर्थात् सर्वशेषी परब्रह्म के शरीररूप जो ब्रह्मा विष्णु रुद्र प्रभृतिक प्रभाव शाली देव हैं उनसे भी पूजनीय हैं। "**तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम्**" (भागवत) इस महर्षि वचन से जव सर्व शरीरी भगवान् श्रीरामजी ब्रह्मादिक का भी पूज्य हैं तव तो साधारण देवों तथा मनुष्य प्रभृतिक सर्व प्राणियों से पूज्य हैं यह बात कैमुतिक न्याय से सिद्ध होता है। तथा भगवान् श्रीरामजी शरण्य हैं। अथवा शरण में आये हुए व्यक्ति को सांसारिक तापों से विमुक्त करके सर्वदा भय वर्जित परमपद को प्रदान करते हैं। ऐसा श्रीमद्रामायण में महर्षि वचन है-

"**सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।**
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥"

ऐसा स्वयं श्रीकोशलेन्द्र सरकार का फरमान-प्रतिज्ञा वाक्य है इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीकोसलेन्द्र सरकार के समान अथवा उनसे बडा कोई शरणागत वत्सल नहीं है। क्योंकि यह तो अनेक भवोपार्जित दुस्तर संसार सागर से भी पार लगाकर परम पद को प्राप्त करानेवाले हैं।

समान अति रमणीय है। तथा जो साधक इसका जाप करते हैं उन्हें सर्व फल को देनेवाला है। सभी मन्त्र में श्रेष्ठ वैष्णव मन्त्र हैं उन वैष्णव मन्त्रों में भी अत्यधिक फल को देनेवाला यह श्रीराममन्त्र "रां रामाय नमः" है। इस तरह शिवसंहिता में भगवान् शिवजी ने इस श्रीराममन्त्र का उपर्युक्त रूपमें माहात्म्य का वर्णन किया है।

इसतरह सर्वव्यापक तथा मन्त्रों में प्रधान जो श्रीराममन्त्र है वह विरक्त श्रीवैष्णव आचार्य से प्राप्त करने के योग्य-प्राप्य है। तथा प्राप्त करके जपनीय है इस बात को सनत्कुमार संहिता में कहा है **"श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्म संज्ञकम्। ब्रह्महत्यादि पापघ्नमिति वेदविदोविदुरिति"** अर्थात् सनत्कुमार कहते हैं→"हे नारद ? ब्रह्म संज्ञक तारक यह श्रीराम मन्त्र परम जपनीय है। ब्रह्म हत्या प्रभृतिक सकल पापों का विनाशक है। ऐसा वेद को जाननेवाले विद्वान् लोग कहते हैं।

यह षडक्षर श्रीराममन्त्र उपासक पुरुष को गर्भ वास जन्ममरणादि रूप महाभय से छुटकारा करा देता है। इसलिए इस श्रीराममन्त्र को तारक मन्त्र कहते हैं। एतादृश षडक्षरमन्त्रराज जाप्य है इसप्रकार परम जपनीय जो श्रीराममन्त्र है वह, **"परीक्ष्य कर्मचितान् लोकान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन स तद्विज्ञानार्थं गुरुमुपसदेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्"**। अर्थात् शुभाशुभ कर्म द्वारा प्राप्त जो लोग उसकी परीक्षा करके ब्राह्मण अधिकारी वैराग्य का सम्पादन करे, वह मन में विचार करके अन्य समस्त क्रिया से प्राप्त नहीं होनेवाला मोक्ष केवल अग्नि होत्रादिक कर्म से प्राप्त नहीं हो सकता है। किन्तु तत्वत्रय के ज्ञान से ही होगा। इसलिए तत्त्वत्रयान्तर्गत श्रीसीतापति रूप परम ब्रह्म को जानने के लिये श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास समित्पाणि होकर के जाय। एतादृश शान्तदान्तादि गुणविशिष्ट समागत अधिकारी को गुरु यथा सम्प्रदाय परम गोपनीय श्रीराममन्त्र का उपदेश करे। तदनन्तर वह अधिकारी गुरूपदिष्ट प्रकार से यथोक्त मन्त्र का जाप कर परमपद का भागी बने। प्रकृत विषय का विशेष विवेचन मन्त्रराजमीमांसा-विवरण में देखें ॥२॥

यावद्वेदार्थगर्भं प्रणविजगदुदाधारभूतं सविन्दु
प्रव्यक्तं रामबीजं श्रुतिमुनिगदितोत्कृष्टषड्व्याप्तिभेदम्।
रेफारूढत्रिमूर्तिप्रचुरतरमहाशक्तिविश्वोन्निदानं
शश्वत्संराजते यद्विविधसकलसंभासमानप्रपञ्चम् ॥३॥

अभ्युदय तथा निःश्रेस फल प्राप्ति के लिए क्रियमाण जो श्रीराममन्त्र का जप है वह मन्त्रार्थ के अनुसन्धान के बिना नहीं हो सकेगा। क्योंकि प्रयोग संबद्ध जो अर्थ है उसका जो स्मारक हो वही मन्त्र है। ऐसा मन्त्र का लक्षण पूर्वमीमांसा में निर्णय किया गया है। अतः "रां" इस बीज से प्रतिपाद्य सकल चराचर के जन्मादि का कारण जो परब्रह्म हैं उनको बतलाने के लिए तथा स्वप्रकाश चैतन्य स्वरूप तथा माया एवं माया कार्य से अतीत जो भगवान् श्रीरामात्मक ईश्वर हैं, वे त्रिगुणात्मक माया कार्य जगत् के सर्ग स्थिति एवं प्रलय के कारण हैं। इस बात को बतलाते हुए "**रां रामाय नमः**" इत्याकारक जो मन्त्रराज है उसका अवयव अर्थात् एक देशभूत जो "**रां**" इत्याकारक अग्नि बीज है, उस बीज के अर्थ को बतलाने के लिए उपक्रम करते हैं "**यावद्वेदार्थगर्भम्**" इत्यादि।

"**रां रामाय नमः**" इत्याकारक तारक मन्त्रराज के आदि में वर्तमान जो 'रां' इत्याकारक बीज है वह अनुक्षण स्वेतर प्रकाश निरपेक्ष होकर के प्रकाशित होता है। श्रुति कहती है "**तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्यभासाजगदिदं विभाति**" इति। यह श्रीरा मबीज कैसा है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में आचार्यजी कहते हैं "**यावद्वेदार्थ गर्भमिति**" इस श्रीरामबीज के गर्भ-कुक्षि में-अभ्यन्तर में जितने वेद के अर्थ हैं वह सव प्रविष्ट हैं। जिस प्रकार वट बीज के अन्दर में वटवृक्ष अवस्थित रहता है उसी तरह 'रां' इस बीज के अभ्यन्तर में सकल वेदार्थ निहित हैं। इसलिए यह बीज "**यावद्वेदार्थगर्भितः**" कहलाता है। किस तरह यावद्वेदार्थ घटितत्व है ऐसा पूछते हो तो सुनिये-यह जो गायत्री मन्त्र है जो कि सर्ववेदमयी है उसमें अनेक प्रकारक माहात्म्य विशिष्ट तो सविता देव हैं। उनसे अभिन्न सूर्यमण्डल में विद्यमान भगवान् श्रीसीतारामजी ही हैं ऐसा सनत्कुमार संहिता में कहा है-

"**सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम् ।**
नमामि पुण्डरीकाक्षममेयं गुरुतत्परम् ॥" इति ॥

अर्थात् गायत्री मन्त्र सर्ववेदमय है। उसमें वर्णित जो सविता देव हैं वही परमात्मा श्रीराम हैं। यह सनत्कुमार संहिता से स्पष्ट होता है। और एतादृश जो श्रीरामजी हैं वेही श्रीरामजी "रां" इस बीज में 'र' शब्द से प्रतिपादित होते हैं। इसतरह से "रां" इस बीज में यावद्वेदार्थ गर्भत्व सिद्ध होता है। और भी देखिये, "**जन्माद्यस्ययतः**" इस सूत्र से प्रतिपाद्य जगत्कारणीभूत अनन्त कल्याण गुणाकर जो सर्वेश्वर

श्रीरामजी हैं वे ही बीज के 'र' शब्द से प्रतिपादित होते हैं। प्रकृत सूत्र के स्वरचित आनन्दभाष्य में आचार्यजी ने ऐसा ही कहा है-**एतदुक्तं भवति-'यतो वा इमानि'** (तै-३/१/१) **इति श्रुतिरपि सूक्ष्मचिदचिच्छरीरकस्य ब्रह्मण एव लक्षणं दर्शयति, तदेव ही जगत्कारणम्'** (आ. भा. १।१।२)

इससे सिद्ध होता है कि बीज यावद्वेदार्थ घटित है। इसलिए आचार्यश्री ने बीज में "**यावद्वेदार्थगर्भम्**" यह विशेषण दिया है।

पुनः यह 'राम' कैसा है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं "**प्रणवि**" तथा यह बीज प्रणवि प्रणव वाला है। जो स्तूयमान हो, उपास्य हो, उसको प्रणव, ओंकार कहते हैं। तादृश प्रणव वाला श्रीरामबीज है। अर्थात् वह प्रणव-ओंकार इस बीज में रहता है। इस तरह "रां" में चार अक्षर है "र.अ.आ. तथा म्" इसमें पृषोदरादि गण पठित होने से र का अकार का दीर्घ हो जाता है। तदन्तर दीर्घाकार को उकार आदेश तथा गुण करने से ओम् इत्याकारक प्रणव सिद्ध होता है। अतः ओम् की प्रकृति "रां" होने से बीज प्रणवी कहलाता है।

पुनः यह श्रीराम बीज इस स्थावर जङ्गम सकल जगत् का उत्कृष्ट आधार-आश्रय रूप है। अर्थात् इस जगत् का वह बीज उपादान कारण है। तथा निमित्त कारण अर्थात् कर्त्ता कारण भी है। चेतन अंश को प्रधान करके तो निमित्त कारण होता है। तथा स्वशरीर रूप प्रकृत्यंश को प्रधान करके उपादान कारण बनता है। अत एव परिणामी कहलाता है विशेषणांश की प्रधानता होने से, यों तो परमात्मा निर्मल ज्ञानानन्द रूप होने से किसी का उपादान नहीं है। परमात्मा चेतन सर्वशक्तिमान् होने से कर्त्ता तो है ही परन्तु प्रकृति उपादान कारण भी है। इस बात को "**प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात्**" इस सूत्र में भाष्यकारजी ने कहा है कि ईश्वर इस जगत् का उपादान कारण भी है। इसमें "**सदेवसोम्येदमग्रे आसीत्**" **बहुस्यां** "**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते**" इत्यादि श्रुति प्रमाण हैं। तथा रामतापिनी में भी कहा है "**सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ... ... ...एष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्**" इत्यादि। इससे सिद्ध होता है कि वह श्रीराम बीज जगत् का उत्कृष्ट आधारभूत है।

तथा वह बीज **सविन्दु** है-जल विन्दु से युक्त है। एतादृश विन्दु सहित श्रीराम बीज सकल स्थावर जङ्गम जगत् का उत्कृष्ट आधारभूत है यह श्रुत्यादि सिद्ध है।

तथा यह श्रीरामबीज सुव्यक्त है अर्थात् समीचीन रूपसे व्यक्त किया गया है। अर्थात् प्रकाशित हुआ है । स्थूल चराचर जगत् जिसके द्वारा सुव्यक्त है । जिसतरह परिमाण से छोटा भी वट धाणा से महान् यह वटवृक्ष प्रकाशित अर्थात् व्यक्त हो जाता है । उसी तरह इस श्रीरामबीज से यह संसार वृक्ष अभिव्यक्त होता है । इसलिए संसारात्मक वृक्ष को ऊर्ध्वमूल गीता में कहा है । श्रुति भी **"ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाखा एषोऽस्वत्थः सनातनः तदेव शुक्रमित्यादि"** कहती है पुनः यह श्रीरामबीज **"श्रुतिमुनिगदितोत्कृष्टषड्व्याप्तिभेदम्"** है । अर्थात् श्रुति मुनियों के द्वारा उक्त कथित है उत्कृष्ट समीचीन नाम, रूप, यश, स्वरूप तथा मन्त्र इन छओं की व्यापकता जिसमें । एतादृश यह श्रीरामबीज है । इसमें नाम की व्यापकता में यजुर्वेदीय श्रुति प्रमाण है **"न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद् यशः"** यथा आश्वलायन श्रुति में भी कहा है नाम की व्यापकता तथाहि **"जपान्तेनैव शरीरेण देवता दर्शनं करोति । कलौनान्येषां भवति । यजूंषि नामेतिनामैव ब्रह्मरूपेण श्रुतय आहुः"** इति । **"सदा रामोहमित्येतत्तत्त्वतः प्रवदंति ये । न ते संसारिणो नूतमित्यादि** । तथा दिव्यमङ्गल विग्रह विशिष्ट भगवान् की रूप व्यापकता में भी श्रुत्यादि अनेक प्रमाण है । **"य एषोऽन्तरातरादिये हिरणमयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यशमश्रु र्हिरण्यकेशः"** इत्यादि । इस तरह यश गुण स्वरूप तथा मन्त्र का व्यापकत्व श्रुति स्मृत्यादि प्रमाणित है । उनको भी जानना चाहिए । तथा यह श्रीरामबीज **रेफारूढ त्रिमूर्ति** है । विष्णु ब्रह्मा तथा महेश का वाचक जो आकार अकार तथा मकार जिस श्रीरामबीज में आश्रित हैं । अर्थात् ये विष्णु प्रभृतिक देवों जिस बीज पर आधारित हैं तथा सर्गस्थिति एवं संहार का सम्पादन करनेवाली महाशक्ति ब्रह्मा विष्णु तथा महाशक्ति जिस बीज में विद्यमान है। और जो जरायुज आण्डज स्वेदज और उद्भिज्ज भेद से विभिन्न अनेक प्रकार से भासमान सकल विश्व प्रपञ्च का आधार रूप है, अर्थात् इस ब्रह्माण्ड के चारों तरफ विद्यमान आवरण पञ्चमहाभूत महत्तत्व अहंकार तथा मूल प्रकृति से युक्त एतादृश अनन्तान्त कोटि ब्रह्माण्ड प्रकाशित होते हैं वह सव ब्रह्माण्ड चतुर्मुख ब्रह्मा से लेकर सहस्त्र मुख ब्रह्मा पर्यन्त जो गुण प्रधानक केवल सर्ग क्रिया में संलग्न ब्रह्मा लोग जिस परब्रह्म परमेश्वर से अधिष्ठित हैं । एतादृश श्रीरामबीज "रां" उपर्युक्त अनेक विशेषणों से युक्त होने के कारण सम्पूर्ण श्रुतिस्मृति से सर्व मन्त्रों में सम्राट् की तरह श्रेष्ठ है । अर्थात् ब्रह्माण्ड अनेक है उन ब्रह्माण्डों में ब्रह्माण्ड का उत्पादक तथा

संचालक गुण प्रधान ब्रह्मा भी अनेक हैं। उन ब्रह्मों से उच्चारित श्रुति भी अनेक हैं उन श्रुतियों में अनेक देवताओं के मन्त्र भी अनेक हैं। उन अनेक श्रुति प्रतिपादित अनेक मन्त्रों में भी श्रीरामबीज श्रेष्ठ होने से सर्वापेक्षया यह श्रीराममन्त्र उत्तमोत्तम है। अत एव चतुर्वर्ग फल प्रदायक इस श्रीराममन्त्र का ही जप करना सर्वथा श्रेयस्कर है। एतादृश मन्त्र चिन्तामणि को छोडकर के जो अन्य मन्त्र का जप करने की इच्छा करता है वह, "**तृषितो जाह्नवी तीरे कूपं खनंतिदुर्मतिः।**" इस न्याय विषयता का अतिक्रमण नहीं करता है। विशेष विवरण पूर्व श्लोक में देखिए ॥३॥

तत्राद्येन पदेन रेण भगवान् सीतापतिः प्रोच्यते
श्रीरामो जगतां गुणैकनिलयो हेतुश्च संरक्षकः।
तच्छेषीपदतोऽप्यतो भगवतोऽनन्यार्हशेषत्वकम्
व्यावृत्तिस्तु सुरान्तादिगतसत्तच्छेषताया मुहुः ॥४॥

पूव श्लोक से उपर्युक्त प्रकार से श्रीरामबीज "रां" इसका समुदायात्मक "रां" का अर्थ बतलाकर बीज के अवयवार्थ का अर्थात् बीज घटक "**र. अ. आ.म्.**" के अर्थ को बतलाने के लिए उपक्रम करते हैं "**तत्राद्येन पदेन रेण भगवानित्यादि।**" श्रीरामबीज के अन्तर्गत जो प्रथम पद है रेफ तादृश रेफ में सर्वेश्वर श्रीसीतानाथ श्रीरामचन्द्रजी के सकल जडचेतन साधारण जगत् का त्रिविध कारण अर्थात् उपादान कारण निमित्तकारण तथा सहकारीकारण रूप त्रिविध कारणता का तथा जगत् का संरक्षक एवं शौर्यवीर्यादि सकल हेय प्रत्यनीक कल्याण गुणों का प्रधान आश्रय कहे जाते है। अर्थात् एक ही परमेश्वर सकल जगत् कारण हैं। तदतिरिक्त कोई जगत् का कारण नहीं है। यद्यपि एक वस्तु में त्रिविध कारणत्व प्रायः नहीं देखने में आता है। तथापि सर्व समर्थ परमेश्वर में रूपभेद से सव सम्पन्न होता है। जिस तरह एक ही अग्नि में दाहकत्व पाचकत्व तथा प्रकाशकत्व रूप त्रिविध कार्यकारित्व होता है वस्तु स्वभाव विशेष से, यथा एक ही पुरुष पिता पुत्र मित्र बनता है, पितृत्वादि अपेक्षा से उसी तरह प्रकृत में परमेश्वर सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट रूपसे स्थावर जङ्गम जगत् का उपादान कारण होते हैं सङ्कल्प विशिष्ट रूपसे जगत् का निमित्त कारण अर्थात् कर्ता कारण बनते हैं। जिस तरह घट कार्य के प्रति कुलाल संकल्प विशिष्ट रूपसे घटादि का कर्ता है। और कालान्तर्यामी रूपसे सहकारी कारण बनते हैं। जिस तरह घटादि

कार्य के प्रति काल दिशा प्रभृतिक पदार्थ सहकारी कारण बनता है उसी तरह एक ही लूताकीट शरीर प्रधान रूपसे तन्तु का उपादान होता है, और चेतनांश प्रधान होकर के कर्ता कारण बनता है ऐसा लोक में भी होता है। तो ईश्वर तो समाभ्यधिक रहित है। सर्व शक्तिमान् है तो परमेश्वर में त्रिविध कारणत्व घटित होगा इसमें क्या आश्चर्य तथा क्या अनुपपत्ति है ?। इसप्रकार से त्रिविध जगत् कारणत्व ईश्वर में है ऐसा बीज के आद्याक्षर से प्रतिपादित होता है। इस बात को महर्षि व्यासादिक मुनि कहते हैं।

और रेफोत्तर जो अकार पद है उस अकार से सकल चेतन अचेतन पदार्थों का भगवान् श्रीसीतापति शेषी अर्थात् नियामक हैं, ऐसा बोधित होता है यों ऋषि लोग कहते हैं। एवं आकार पद से भगवान् में अनन्यार्ह शेषत्व अर्थात् जीवों की एकमात्र नियामकता है ऐसा वतलाते हैं महर्षिगण। पुनः बीज का जो चरमवर्ण अर्धमकार है तादृश बीजावयवमकार से सर्वकारण श्रीसीतापतिजी से ब्रह्मा विष्णु तथा महेश्वरादिक देवों में जीव के प्रतिनियामकता की व्यावृत्ति का प्रतिपादन किया जाता है। अर्थात् सर्वजीव के प्रति यदि नियामक हैं तो श्रीसीतापतिजी ही हैं। किन्तु उनसे भिन्न जो महामहिमतया लोग प्रसिद्ध देवान्तर ब्रह्मादिक हैं उनमें जगत् की नियामकता नहीं है। अर्थात् देवान्तर कोई भी जगत् का नियामक नहीं है। भगवान् सवका अन्तर्यामी बनकर के नियामक होते हैं। ऐसा **"ईश्वरः सर्वभूतानाम्"** इत्यादि तथा अन्तर्यामी ब्राह्मण से सिद्ध होता है जीव जीव का अन्तर्यामी हो ऐसा सिद्ध नहीं होता है। अतः ईश्वर ही अनन्यार्ह शेषी तथा सर्व नियामक है ॥४॥

पितापुत्रत्वसम्बन्धो जगत् कारणवाचिना।

रक्ष्यरक्षकभावश्च रेण रक्षकवाचिना ॥५॥

पूर्व श्लोक से बीजघटक रेफादि पदों से श्रीसीतापतिजी का बोध होता है, ऐसा बतलाकर के अग्रिम श्लोकों से ब्रह्मा हिरण्यगर्भ से लेकर के कीट पतंग सकल जगत् का बीज प्रथमाक्षर प्रतिपाद्य श्रीरामचन्द्रजी के साथ जगत् का अनेक प्रकारक सम्बन्ध हैं, इस सम्बन्ध को बतलाने के लिए आचार्य श्री कहते हैं-**"पितापुत्रत्वसम्बन्धः"** इत्यादि। स्थावर जङ्गमात्मक समस्त जगत् का भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के साथ रेफ के कारण वाचकता होने से पिता एवं पुत्रत्व सम्बन्ध तथा रेफ के रक्षा वाचक होने से रक्ष्य रक्षकभाव सम्बन्ध भी प्रदर्शित होता है। ऐसा मुनिलोग कहते हैं ॥५॥

शेषशेषित्वसम्बन्धश्चतुर्थ्या लुप्तयोच्यते ।

भार्याभर्तृत्वसम्बन्धोऽप्यनन्यार्हत्ववाचिना ॥६॥

अकारेणाऽपि विज्ञेयो मध्यस्थेन महामते ? ।

स्वस्वामिभावसम्बन्धो मकारेणाथ कथ्यते ॥७॥

जगत् के कारण का कारण वाचक पद से केवल जीव ईश्वर में पितापुत्रत्व सम्बन्ध मात्र का ही कथन होता है इतना ही नहीं किन्तु सम्बन्धान्तर का भी बोध होता है, इस वात को बतलाने के लिए आचार्य श्री उपक्रम करते हैं- "**शेषशेषित्वसम्बन्धः**" इत्यादि ।

हे महामते सुरसुरानन्द ? "रां" इत्याकारक जो बीज मन्त्र है इसमें "र. अ. आ. म्." इत्याकारक चार अक्षर हैं। इसमें जो बीज का प्रथमाक्षर 'र' है उसके वाद में चतुर्थी विभक्ति थी। उस चतुर्थी विभक्ति का "**सुपां सु लुक्**" इत्यादि सूत्र से लुक् हो गया है। वह लुप्त जो चतुर्थी विभक्ति है तादृश विभक्ति से जीव समुदाय तथा परमेश्वर में शेष-शेषी भाव सम्बन्ध प्रतिपादित होता है। ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। तथा अनन्यार्हत्व रूप अर्थ का वाचक जो मध्यस्थित बीज का द्वितीय अक्षर अकार है उस अकार से जीवेश्वर में भार्या-भर्तृत्व सम्बन्ध कहा जाता है। एवं बीज का जो तृतीय अक्षर आकार है उससे वात्सल्य शौर्यादि सभी सम्बन्ध का प्रतिपादन होता है। और बीज का चतुर्थाक्षर मकार से स्व स्वामिभाव सम्बन्ध प्रतिपादित होता है ऐसा समझो ॥६-७॥

आधाराधेयभावोऽपि ज्ञेयो रामपदेन तु ।

सेव्यसेवकभावस्तु चतुर्थ्या विनिगद्यते ॥८॥

छ अक्षर वाला "रां रामाय नमः" इस मन्त्रराज में जो प्रथमाक्षर बीज है उसका व्याख्यान करके तादृश, "रां" बीज से सम्बन्धित जो जीव स्वरूप उसका सम्बन्ध क्या है ? इस वात को समझाने के लिए उपक्रम करते हैं "**आधाराधेयभावोपीत्यादि**"-

"रामाय" यहां चतुर्थी प्रत्यय का जो प्रकृति 'राम' पद है उस श्रीराम पद से चेतनाचेतन अर्थात् जीव जड महाभूत से लेकर प्रकृत्यन्त पदार्थ तथा "**आत्मा**

ज्ञानमयोऽमलः'' ''प्रज्ञानं ब्रह्म'' इत्यादि श्रुति बोधित जो परमकारण श्रीरामात्मक आत्मा है इन दोनों में आधाराधेय भाव सम्बन्ध का प्रतिपादन किया जाता है।

आधेयत्व एक मात्र में रहता है द्विष्ठ नहीं है। और सम्बन्ध वह होता है जो दो में रहनेवाला हो। तव आधारत्वाधेयत्व को सम्बन्ध कहना तो समीचीन जैसा नहीं लगता है। तथापि आधारतानिरूपिताधेयत्व तथा आधेयतानिरूपित आधारत्व को सम्बन्ध मानने से कोई क्षति नहीं है। इसलिए आचार्य श्री ने आधाराधेय भाव को सम्बन्ध मान लिया है।

और, **''रामाय''** में जो विद्यमान चतुर्थी विभक्ति अर्थात् जिसका लोप नहीं हुआ है उस विद्यमान चतुर्थी विभक्ति से जीव तथा ईश में सेव्य सेवक भाव बोधित होता है। इसमें राम सेव्य हैं तथा जीव समुदाय जो कि बद्धमुक्त और नित्यसूरि विभाग से त्रिधा विभक्त है, सेवक हैं। तादृश भगवान् श्रीरामजी सर्वदा जीवों से सेवनीय हैं ॥८॥

नमः पदेनाखण्डेन त्वात्मात्मीयत्वमुच्यते ।
षष्ठ्यन्तेन मकारेण भोग्यभोतृत्वमप्युत ॥९॥

''रां रामाय नमः'' यह जो मन्त्रराज है जिसको महर्षिगणों ने श्रुतिस्मृति का आलोडन करके तारक मन्त्र कहा है। उस मन्त्र के आदि रां.रा मा. तथा य. इन चार पदों के अर्थ को बतला करके न मः इत्याकारक जो पञ्चम तथा षष्ठ पद हैं उनकी व्याख्या बतलाने के लिए आचार्यजी कहते हैं **''नमः पदेनाखण्डेन''** इत्यादि।

अखण्ड जो नमः पद है, तादृश नमः पद से चेतनाचेतन साधारण सकल जगत् तथा श्रीरामात्मक परब्रह्म के साथ जीव का आत्मात्मीयत्व सम्बन्ध प्रतिपादित होता है ऐसा महर्षिगण कहते हैं। अर्थात् आत्मात्मीयत्व सम्बन्ध घटक प्रथम आत्मा पद ईश्वर वाचक है। क्योंकि **अन्तर्यामी ब्राह्मण में ''एष ते आत्माऽन्तर्यामी अमृतः''** इस वाक्य से कहा है। तो आत्मा स्वरूपतः व्यापक तथा जगत् कारण ब्रह्म का आत्मीय जीव है। इसलिए जीवेश्वर में आत्मात्मीयत्व रूप सम्बन्ध घटता है। हे सुरसुरानन्द ? तुम इस वात को मद्वचन तथा श्रुतिस्मृति पुराणों से जानों।

और सखण्ड नमः पद घटित षष्ठ्यन्त म पद से जडचेतन साधारण जगत् तथा सर्वकारण परमेश्वर में भोग्य भोक्तृत्वादिक सम्बन्ध प्रतिपादित होता है। इसमें सकल

तथा "**योगिगम्यांघ्रिपद्मः**" इति योगी जो सनक सनन्द सनातन सत्कुमार प्रभृतिक योगशील महर्षि लोग हैं उन लोगों से गम्य प्राप्य है चरण कमल जिनका, तादृश भगावान् श्रीरामजी हैं। अर्थात् भगवान् का चरणकमल अकृत पुण्यकर्मा, अत एव असंस्कृत अन्तःकरण वाले व्यक्तियों से प्राप्त नहीं होता है। किन्तु पूर्व कथित महापुरुषों से ही प्राप्त होत है। जिस तरह वैदिक कर्मों में द्विजाति मात्र को अधिकार है ऐसा नियम है। ऐसा नियम यहां नहीं भगवान् श्रीकृष्णजी ने कहा है-

"येऽपि स्युं पाप योनयः

स्त्रीयो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यान्ति पराङ्गतिम् ॥

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्वमामिति ॥"

अनेक नीच योनिक तथा स्त्री प्रभृतिक भक्तों का उद्धार श्रीकोसलेन्द्र सरकार ने किया है। ऐसा पौराणिक वार्ता भी लोक में प्रचलित है।

कविकुल कोकिल गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी का यह गान तो उनके विश्व गुरुत्व स डिंडिमनाद फरमा रहा है-

पाई न केहि गति, पतीत-पावन राम भजि सुनु सठ मना।

गनिका, अजामिल, व्याध, गीध, गजादि खल तारे घना।

आभीर, जवन, किरात, खल, स्वपचादि अति अघरूपजे।

कहि नाम वारक तेऽपि पावन होहिं, राम ? नमामि ते। (मानस)

पुनः भगवान् "**अस्पृश्यः क्लेशादिभिरिति**" क्लेश कर्म विपाक आश यादिकों से अस्पृष्ट है ? पतञ्जलि ने कहा है-

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।

इसमें अविद्या अस्मिता राग द्वेष और अभिनिवेश ये योगशास्त्रोक्त पाँच नाम है क्लेश। अतद् वत् में जो तत्प्रकारक ज्ञान उसको अविद्या मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे शरीर में आत्मज्ञान, आत्मा में शरीरत्व प्रकारक ज्ञान वगैरह को अविद्या कहते हैं। अस्मिता-इसका विशेष लक्षण योगसूत्र विवरण में देखिये। राग-अनुराग द्वेष परद्रोह भावना अभिनिवेश मरणत्रास जो कि ब्रह्मा से लेकर कीटपतङ्ग पर्यन्त मरणत्रास समान रूपसे होता है। यह अविद्या ही अस्मिता, राग द्वेष और अभिनिवेश इन चारों का कारण है। कर्म शब्द का अर्थ होता है शुभाशुभ पुण्यपाप। इनका जो फल है उसको

विपाक कहते हैं। जिसको योगशास्त्र में कहा है-जाति, आयु और भोग सुखादि रूप का अनुभव। तथा आशय संस्कार वासना। इन सवों से असम्बद्ध पुरुष विशेष को ईश्वर कहते हैं। ऐसा पुरुष विशेष को ईश्वर समझना-ऐसा योगमत है। इसका विशेष विवरण योगसूत्र भाष्य से जानिए। विस्तार के भय से यहाँ संक्षेप में बतलाया गया है।

"**सत्समुदितसुयशाः**" इति। सज्जन विद्वान् श्रीवाल्मीकि श्रीव्यासादि प्रवर मनिषियों से समुदित है अर्थात् समीचीन रूपसे लोक में वर्णित है सुयश सुश्लोक न तु निन्दा श्लोक जिनका-एतादृश भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं। श्रीवाल्मीकि मुनिजी ने श्रीमद्रामायण ग्रन्थ में विस्तार रूपसे सवको अपने अधीन करनेवाले रावण वाली प्रभृति का वध तथा अति दुस्तर समुद्र बन्धन वगैरह अनेक यशस्कर कर्म का वर्णन किया है। इसलिये वर्णनीय नायक में उदात्तत्व तथा लोकोत्तरत्व की अभिव्यक्ति होती है। तथा "**सूरिमान्यः**" इति। वह भगवान् सूरि अर्थात् नित्य मुक्त जो श्रीहनुमानजी प्रभृतिक सूरि हैं उन सवों से मान्य पूजनीय हैं। "**सदा पश्यन्ति सूरयः**" इस वचन से सिद्ध होता है कि नित्य सूरिगण सर्वदा ईश्वर का पूजन करते हैं। तथा **वदान्य** चतुर्वग धर्मार्थ काममोक्ष फल को देनेवाले हैं। एतादृश ईश्वर गुण सम्पन्नस वेंश्वर श्रीरामचन्द्रजी हैं। "**सुमहितमहिमा साधुवैदेरशेषैरिति**" साधु समीचीन रूपसे यथा हो तथा शाश्वत सर्वदा अशेष निखिल सभी वेदों से प्रतिपादित है महिमा महत्त्व जिनका। तथा "**निर्मृत्युः**" जो श्रीरामजी मृत्यु से सर्वदा रहित हैं तदुक्तम्-श्रीमद्रामायणे "**विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः**" शरीर तथा सोदरों के साथ वैष्णव तेज स्वदिव्य धाम साकेत में प्रविष्ट हो गए इस वचन से सिद्ध होता है कि भगवान् श्रीरामजी मृत्यु रहित है। और भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं। "**परास्य शक्तिर्विबिधैव श्रूयते**" इस श्रुति से सिद्ध होता है कि समाभ्यधिक विवर्जित अत्युत्कृष्ट शक्ति ईश्वर में है। तथा जिस ईश्वर में जरा वृद्धावस्था नहीं है किसी प्रकार का रजो गुण प्रयुक्त मल नहीं है "**अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युः**" ईश्वर सकल पाप कर्म से रहित है।

तथा, "**विधिभवप्रमुखैर्गीर्मनोभ्यामगम्यः**" ब्रह्मा विष्णु महादेव प्रभृतिक महानुभावों के भी वाणी मन से अगम्य है-प्राप्त करने के अयोग्य है। "यतो वाचो निवर्तन्तेऽप्राप्य मनसा सह" इति श्रुतेः।

अर्थात् जिस परमात्मा से यह मन वाणी के साथ-साथ परम तत्व का अप्राप्त करके निवृत्त हो जाता है। अर्थात् परमात्मा वाणी मन से ग्रहण करने योग्य नहीं है।

प्राकृत रूपादि के सहकार से पदार्थ ग्राहक चक्षुरादिक परमात्मा का ग्राहक नहीं होता है। जब विधिभव प्रमुख देव भी मनोद्वारा परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकते हैं तव तदीतर व्यक्तियों की तो कथा ही क्या ? अर्थात् इतर व्यक्तियों के वाणी मन से तो सर्वथा अप्राप्य हैं। इसतरह सर्व नियामक सर्वान्तर्यामी सर्वशेषी चेतनाचेतन शरीरक जगज्जन्मादि कारणीभूत हेय प्रत्यनीक अनन्त कल्याण गुणक सकल वेद प्रतिपादित सर्वेश्वर श्रीसीतानाथजी सकल लोकाधिपति ही परमेश्वर हैं यह सिद्ध होता है।

इसप्रकार विगत प्रकरण से आचार्यश्री ने परम तत्त्व का निरूपण किया। इसतरह "किं तत्त्वम्" ऐसा जो प्रथम प्रश्न जगद्गुरु श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी का था, उसका समाधान किया गया ॥९॥

श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर किरणे प्रथमपरिच्छेदः ॥१॥

अथ जप्यात्मकरहस्यत्रयनिरूपणम्

सञ्जप्यस्तारकाख्योमनुवर इह तैर्वह्निबीजं यदादौ
रामो ङे प्रत्ययान्तो रसमितशुभदस्वक्षरः स्यान्नमोन्तः।
मन्त्रो रामद्वयाख्यः सकृदितिचरमप्रान्वितो गुह्यगुह्यो-
भूताक्ष्युत्संख्यवर्णः सुकृतिभिरनिशंमोक्षकामैर्निषेव्यः ॥१॥

इसके पूर्व में लोकोपकार की इच्छा से ज.गु. श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी से पूछा हुआ-तत्त्व क्या है ? इस प्रश्न का चित् अचित् और ईश्वर रूप से तीन तत्त्व हैं, ऐसा उत्तर देकर के तदन्तर पूर्वोक्त चिदचिदादि तत्त्वत्रय विषयक ज्ञान का प्रधान साधन जो मन्त्रराज का जप है, तादृश मन्त्रराज विषयक **"किञ्च जाप्यम्"** इत्याकारक जो द्वितीय प्रश्न है, उस प्रश्न का समाधान करने के लिये आचार्य श्री उपक्रम करते हैं **"सञ्जप्यस्तारकाख्यः"** इत्यादि। हे सुरसुरानन्द ? उस मन्त्र का जप करना चाहिए जिसको सम्प्रदाय के पूर्वाचार्य महर्षियों ने तारक मन्त्र-ऐसा नामकरण किया है। जिस अक्षर समुदायात्मक मन्त्र के आदि में तो सर्वबीज श्रेष्ठ अग्निबीज 'रां' है। और मध्य में चतुर्थ्यन्त 'राम' पद है। और अन्त में "नमः" इत्याकारक पद है। अर्थात् **'रां रामाय नमः'** एतादृश स्वरूप उस तारक मन्त्र का है। वह मन्त्रराज शुभ कल्याणकारी सुप्रसन्न अर्थात् मनोहर छ **(रां.रा. मा. य. न. मः)** इत्याकारक अक्षरों से युक्त मन्त्रराज कहलाता है। तथा, **"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते"** इत्यादि चरममन्त्र तथा

"श्रीमद्राचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमतेरामचन्द्राय नमः" से युक्त होने पर, मन्त्र राज नाम को प्राप्त करता है। यह श्रीरामचन्द्रजी का द्वय नामक मन्त्र पुरुषार्थ प्राप्ति की इच्छावाले व्यक्तियों से सदैव जप करने योग्य है अतः इसीका जाप करना चाहिए।

जो व्यक्ति सम्प्रदायान्तर के दुराग्रह रूप वागुरा में फँसकर के कल्पवृक्ष के समान शरणागत व्यक्ति को सद्यः सर्वफल प्रदाता इस मन्त्रराज को छोडकर अन्य मन्त्र के द्वारा देवतान्तर का उपासना करने के आग्रह को नहीं छोडते हैं वे व्यक्ति **"तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः"** **श्रीरघुवीर प्रताप से सिन्धु तरे पाषाण। ते मतिमन्द जो राम तजि भजहिं जाइ प्रभुआन** इन न्याय विषयता का अतिक्रमण नहीं करते हैं। यह मन्त्रराज कल्पवृक्षादिकों को भी सर्वफल प्रदातृत्व सामर्थ्य को देनेवाला है। क्योंकि भगवान् श्रीरामजी सर्वशक्ति एवं सर्वशेषी हैं। प्रकृत मन्त्रराज की विशेष चर्चा अन्यत्र की जायगी इति संक्षेप ॥१॥

♆ मन्त्रराजरहस्यम् ♆

मन्त्राणां व्यापकानां भगवत इह चाव्यापकानान्तुमध्येऽ-
तिश्रेष्ठो व्यापकः सश्रुतिमुनिसुमतः शिष्टमुख्यैर्गृहीतः।
नित्यानामाश्रयोऽयं परितउरुशुभोराममन्त्रः प्रधानः
प्राप्योऽथप्रापकश्च प्रचुरतरगुणज्ञानशक्त्यादिकानाम् ॥२॥

अतीत प्रकरण से चित् अचित् तथा ईश्वर तत्व का निर्वचन के द्वारा परम प्राप्य श्रीवैष्णव सम्मत भगवान् श्रीसीतानाथजी-ईश्वर तत्व का साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया गया है। उस विवेचित परमतत्त्व-प्राप्य परमेश्वर का जो उपासन है वह ऐहिक तथा पारलौकिक स्वर्गादि फल देनेवाला है, इतना ही नहीं स्वर्ग से भी अत्यधिक श्रेष्ठ दिव्यधाम साकेत प्राप्ति रूप सायुज्य मोक्षात्मक परम फल प्रदाता है। आचार्य उदयनने कहा है-

'स्वर्गापवर्गयो र्मार्गमामनन्तिमनीषिणः। यदुपास्तिमसावत्र परमात्मा निरुप्यते॥'

एतादृश सर्वव्यापक सर्व जगत् का कारण भगवान् का उपासन भगवन्नाम वाचक मन्त्र जप द्वारा सम्पन्न होता है। पतञ्जलि मुनि ने कहा है कि-**"तस्य वाचकः प्रणवः"** ईश्वर का वाचक प्रणवादिक मन्त्र है। क्योंकि आगे पुनः कहा है,-**"तन्मन्त्र जपस्दर्थपरिभावनम्"** ईश्वर का वाचक जो मन्त्र है उस मन्त्र का जप करना चाहिए

तथा मन्त्र का जो अर्थ विषय है उसका अनुचिन्तन करना चाहिए। अर्थात् प्रत्यक्ष समानाकार तैलधारावदविच्छिन्न प्रत्यय प्रवाह रूप ध्यान करना चाहिए। अतः प्रकृत में सर्वकारण सर्वशेषितया अभिमत भगवान् श्रीरामजी के मन्त्र का जप करने के पूर्व उस मन्त्र का यथावत् स्वरूप का परिचय आवश्यक है। यह जान करके आचार्यश्री ने प्रथमतः स्वरूप गुणादि द्वारा जाप्य भगवान् के मन्त्र का स्वरूप को बतलाया।

अर्थात् आचार्य श्रीने पूर्व श्लोक में जिस मन्त्र के जप करने से मोक्षान्त फल प्राप्त होता है उस तारक नामक मन्त्र का स्वरूप, रामद्वयाख्य "श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमते रामचन्द्राय नमः" ऐसा बतलाया है।

इसके वाद इस जपनीय तारक मन्त्र का वैभव व्यापकत्वादिकों का दिग्दर्शन कराने के लिए उपक्रम करते हैं, "**मन्त्रणां व्यापकानामित्यादि**-

समस्त साङ्गोपाङ्ग वेदादिक शास्त्रों में प्रतिपादित कर्मों में तथा उपासनाओं में मन्त्र हैं अर्थात् देवान्तरों के जितने मन्त्र शास्त्रों में प्रतिपादित हैं उनमें चराचर का अभिन्न निमित्तोपादान कारणरूप सर्वेश्वर श्रीरामजी का जो मन्त्र है वह श्रेष्ठ है। इसमें भी श्रीनृसिंहवराहादि अवतारों के जो मन्त्र हैं वे अव्यापक मन्त्र हैं। अर्थात् एक देवमात्र के प्रति चरितार्थ होने वाले मन्त्र अव्यापक मन्त्र कहलाते हैं तो मन्त्रान्तर मन्त्रापेक्षया अव्यापक मन्त्र से व्यापक मन्त्र श्रेष्ठ कहा गया है। उन अव्यापक वैष्णव मन्त्र के अपेक्षा से यह व्यापक मन्त्र अतिश्रेष्ठ है। इन अव्यापक तथा व्यापक सर्वमन्त्रों का भी व्यापक मन्त्र श्रीराम मन्त्र श्रेष्ठ है। यह सर्वव्यापक श्रीराममन्त्र श्रुति स्मृति तथा मुनियों से सम्मत है। तथा शिष्टों में अग्रसर जो श्रीअगस्त्य श्रीपराशर हैं उनसे परिगृहीत है। अर्थात् इन मुनियों ने इसका यथावत् अनुष्ठान किया है तथा अद्यावधि साधकवर्ग व्यापकाव्यापक सर्वमन्त्र श्रेष्ठ श्रीराम मन्त्र का अनुष्ठान करते हैं। तथा नित्य जो अनन्त ज्ञानादि गुण तथा "**स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रिया च**" इत्यादि श्रुति समर्थित हेय प्रत्यनीक ज्ञानशक्ति प्रभृतिक कल्याण गुण समुदाय है उन नित्य गुण समुदायों का यह तारकमन्त्र आश्रय है-अर्थात् प्रापक है। अर्थात्, "राम' के अन्दर दो पद हैं। एक तो "राम" इसमें र पद नित्य ज्ञानानन्दबल वीर्य शक्ति वगैरह का बोधक है और अम शब्द प्राप्त्यर्थक अम् धातु से निष्पन्न है वहां अम्यन्ते प्राप्यन्ते ज्ञानादि पदवाच्या गुणा येन स रामः इस करण व्युत्पत्ति से र पद वाच्य ज्ञानादि नित्यगुण समुदाय का प्रापक राम पद समुदायात्मक मन्त्र है ऐसा अर्थ होता है। इसलिये श्रीराममन्त्र जो

शब्दात्मक है वह भी प्रापक सिद्ध होता है। यद्यपि प्रापकत्व धर्म चेतन का है अचेतन में प्रापकता नहीं है। 'राम' यह नाम शब्दात्मक होने से इसमें करण व्युतपत्ति के बल से प्रापकत्व कहना अयुक्त प्राय होता है। तथापि "शब्द तथा अर्थ में तादात्म्य है" इस सिद्धान्त के अनुसार कहा गया है। अर्थात् नाम जो रामात्मक शब्द समुदाय तथा नामी जो साकेताधिपति परमेश्वर ये दोनों एक अभिन्न हैं और अर्थरूप 'राम' में जव सर्व प्रापकत्व सामर्थ्य है तव तदभिन्न शब्दात्मक 'राम' में भी याचित मण्डन न्याय से सर्व प्रापकत्व करण व्युत्पत्ति के द्वारा समर्थन करना अनुचित नहीं है। शब्द तथा अर्थ में तादाम्य तो पतञ्जलि मुनि को इष्ट है ही। वेदान्तियों ने भी "**अतः प्रभवात् प्रत्यक्षामुमानाभ्याम्**" इस ब्रह्मसूत्र में स्थिर किया है। एवं भक्त प्रवर जगद्गुरु श्रीतुसीदासजी ने कहा है-

"गिरा अर्थ जल बीचि सम तहियत भिन्न न भिन्न।

वन्दौ सीताराम पद जिनहि परमप्रियखिन्न ॥

जिस तरह शब्द तथा तत्प्रतिपाद्य पदार्थ को भिन्न कहा जाताहै कहते हैं परन्तु शब्द अर्थ वस्तुत भिन्न नहीं हैं। यथा वा जल तथा तदीय वीचितरंग है। इनमें कहने के लिए भेद तो है क्योंकि यह जल है तथा यह जल सम्बन्धी तरंग है। परन्तु एतादृश प्रतिभास मान व्यवहार विषयीभूत दोनों पदार्थ वस्तुतः भिन्न नहीं है। क्योंकि जल तत्व दोनों में जल तथा तदीय तरंगों में समान रूपसे अनुस्युत है। सिद्धान्त में परिणामी कारण तथा कार्य में तादात्म्य माना गया है। अन्यथा गवाश्व की तरह कार्यकारण भाव ही नहीं होगा। श्रुति भी "**वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्**" इत्यादिक कारण से अतिरिक्त कार्य को नहीं कहती है। एवं "**वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये**" इत्यादि सूक्ति से कालिदासजी ने भी शब्दार्थ का तादात्म्य माना है। एतादृश परमोपास्य परमेश्वर श्रीसीतारामजी वन्दन का विषय है। जिस परमेश्वर को गरीब अर्थात् अनात्मज्ञ व्यक्ति परमप्रिय है। जो आत्म तत्त्व को नहीं जानता है वह गरीब कृपण कहलाता है वारम्वार संसार में परिभ्रमण करने से तो प्रकृत में जिस तरह शब्दार्थ में जलतरंग में अभेद है, उसी तरह श्रीसीतारामात्मक अर्थ में तथा उस अर्थ का वाचक जो पद है अर्थात् मन्त्रात्मक पद है, मन्त्र वाचक है, भगवान् वाच्य हैं तो वाच्य रामात्मक अर्थ परमेश्वर में जिस तरह नित्य ज्ञानादिक गुण तथा परमपद प्रापकत्व है उसी तरह रामात्मक अर्थ में अभिन्न तद्वाचक जो श्रीराममन्त्र

तारकाख्य है उसमें भी करण व्युत्पत्ति से प्रापकत्व सिद्ध होता है। अपि च "र पदवाच्याः अम्यन्ते प्रलीयन्ते यस्मिन् स रामः" इसप्रकार अधिकरण व्युत्पत्ति करके सभी पदार्थों का लय समय में निवास परमेश्वर में होता है। उसी तरह रामाभिन्न रामवाचक पदात्मक मन्त्र में भी होता है। इसप्रकार महामहिम 'राम' का तारक मन्त्र देवतान्तर मन्त्रापेक्षया तथा अव्यापक और व्यापक वैष्णव मन्त्रापेक्षया अतिश्रेष्ठ है ऐसा सिद्ध होता है। इस वात को आचार्य श्री ने प्रकृत श्लोक से सिद्ध किया है। तथा यह तारक 'राम' द्वय घटित महामन्त्र परम शुभ है। क्योंकि संसारानलताप से अनादिकाल से संतप्त जीव भाग्यवश प्राप्त किसी श्रेष्ठ गुरु को प्राप्त करके तादृश गुरु के उपदेश से इस तारक महामन्त्र को प्राप्त करके तादृश मन्त्र बल से संसार सागर का अति क्रमण करता हुआ परमपद को प्राप्त करता है। तथा सर्वदा के लिए भगवान् का कैङ्कर्य करता हुआ परमपद को प्राप्त कर कृतार्थ हो जाता है। अतः परम शुभ मोक्ष का प्रापक तारक मन्त्र को भी "आयुर्वैघृतम्" की तरह कारण में भी कार्यगत धर्म का आरोप करके परमपद के कारण प्रापक तारक मन्त्र में भी परम शुभत्व होता है।

इस श्रीराममन्त्र का माहात्म्य सर्वमन्त्र से उत्तम है यह अगस्त्यादिक संहिता में कहा है→

"सुतीक्ष ? मन्त्रवर्गेषु श्रेष्ठो वैष्णव उच्यते।
गाणपत्येषु शैवेषु शाक्तसौरेष्वभीष्टदः"॥

"वैष्णवेष्वपि सर्वेषु राममन्त्रः फलाधिकः।
मन्त्रराज इति प्रोक्तः सर्वेषामुत्तमोत्तमः॥" इति॥

एवं बृहद् ब्रह्म संहिता में भी→

"श्रीराममन्त्रराजस्य माहात्म्यं गिरिजापतिः।
जानाति भगवान् शंभूर्ज्वलत् पावकलोचनः॥"

शारदातिलक में भी कहा है→

"वेदानां च यथा सामवेदज्ञो जायते वरम्।
तथा समस्तमन्त्राणां राममन्त्रः प्रकीर्तितः॥"

"विश्वरूपस्य ते राम ? विश्वशद्वा हि वाचकाः।
तथैव मूलमन्त्रस्ते विश्वेषां वीजमक्षयम्॥"

"अचिन्त्योयं महाबाहो ? मन्त्रश्चिन्तामणिर्विभो ।

विहायैनं विमूढात्मा ततश्चेतश्च धावति ॥" इति ॥

अर्थात् हे श्रीरामजी ? समस्त जगत् शरीरक होने से आप जिस तरह सम्पूर्ण जगत् स्वरूप हैं, उसी तरह जडचेतन सभी पदार्थ वाचक जो मनुष्य स्थावरादि पद हैं वे सवके सव आपके ही वाचक हैं। हे सर्व व्यापक महाबाहु ? यह जो आपका "रां रामाय नमः" इत्याकारक अचिन्त्य प्रभाव का मन्त्र है वह चिन्तामणि मणि के समान तथा कल्पवृक्ष की तरह अप्रत्यासित अघटीत सकल फलों को देनेवाला है। मूर्ख सम्प्रदायाभिनिविष्टः मूढ पुरुष इस अचिन्त्य प्रभावक श्रीराममन्त्र का निरादर करके इतस्ततः देवान्तर मन्त्रान्तर की तरफ दौड लगाता है। जिस तरह पिपाषित पुरुष गङ्गाजी के किनारे पानी पीने के लिए कूप खोदता है। इसप्रकार से स्कन्दादिक पुराणों में श्रीराममन्त्र राज के माहात्म्य का वर्णन किया है।

"मन्त्र रूपं प्रवक्षामि श्रृणु नारद तत्परः ।

रकारादिमकारान्तं मन्त्र षड् वर्ण संज्ञितम् ॥

षडक्षरात्मकं मन्त्रं तारकं ब्रह्म संज्ञकम्" अर्थात् अगस्त्यजी नारदजी से कहते हैं कि-"हे नारद ? आप सावधान होकर के सुनो मैं आपको तारक मन्त्र के स्वरूप को बतलाता हूँ। रेफ से लेकर के मकार पर्यन्त छ वर्णों से युक्त छः अक्षरवाला "रां रामाय नमः" इत्याकारक ब्रह्म संज्ञक तारक मन्त्र राज है। ऐसा अगस्त्यजी ने नारद सदृश विरक्त महानुभाव को सुनाया है।

"अहं दिशामि ते मन्त्रं तारकं ब्रह्म संज्ञितम् ।

एवं मन्त्रश्च विज्ञेयस्तारकश्चेति संज्ञितः ॥"

"कल्पद्रुम इति स्फीतः साधकानां फलप्रदः ।

सर्वेषां मन्त्र वर्णानां श्रेष्ठो वैष्णव उच्यते ॥"

"तेषु वैष्णव मन्त्रेषु राममन्त्रः फलाधिकः ॥"

अर्थात् महादेवजी कहते हैं कि मैं तुमको ब्रह्म संज्ञित तारक मन्त्र का उपदेश देता हूँ इसको तुम मन्त्र समझो तथा इसी को तारक भी समझो। संसार सागर से पार उतारने वाला है इसलिए इसका नाम तारक मन्त्र होता है। यद्यपि मन्त्रान्तर भी मन्त्र है। तथापि यह मन्त्र होता हुआ तारक भी है। अतः वैष्णवावैष्णव सभी मन्त्र में श्रेष्ठ है। इसी वात को महादेव स्वयं बतलाते हैं→"कल्पद्रुम इति स्फीत" इत्यादि। यह मन्त्र कल्पवृक्ष के

जगत् भोग्य है तथा परमेश्वर भोक्ता है। क्योंकि जडचेतन सकल जगत् भगवान् श्रीरामजी को सुख पहुंचाने वाले हैं एतदर्थ इन सर्व विषयों का निर्माण हुआ है। हे सुरसुरानन्द ? तुम भी भोग्य भोक्तृत्वादिक सम्बन्ध जगत् तथा ईश्वर में है, ऐसा श्रुत्यादि के द्वारा जानो ॥९॥

ज्ञानानन्दस्वरूपोऽवगतिसुखगुणोमेनवेद्योऽणुमानो-
देहादेरप्यपूर्वो विविदितविविधस्तत्प्रियस्तत्सहायः।
नित्यो जीवस्तृतीयेन तु खलुपदतः प्रोच्यते स्वप्रकाशो-
जिज्ञासूनां सदेत्थंशुभनतिसुमतेशास्त्रवित्सज्जनानाम् ॥१०॥

बीजघटित अर्थ को बतलाने के वाद, "रां रामाय नमः" यह जो छ अक्षर वाला तारक मन्त्रराज है उसका प्रथम पद जो "र" है उस "र" के वाच्य जो परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी हैं उन श्रीरामजी के साथ "अ" "आ" "म्" "राम" "आय" "न" तथा "म" इन अवयवों के सम्बन्ध को बतलाने के वाद अब अग्रिम श्लोक से "म" मकार के अर्थ को बतलाने के लिए उपक्रम करते हैं "**ज्ञानानन्दस्वरूपतः**" इत्यादि परमेश्वर को सर्वभाव से नमस्कार करने विमलमतिवाले हे सुरसुरानन्द ? शास्त्र जनित परोक्ष ज्ञानवान् सज्जन विरक्त जिज्ञासु अधिकारियों के जानने के योग्य जीव को तृतीय अक्षर "म" पद से श्रीवशिष्ठ व्यास वाल्मीकि प्रभृति महर्षियों ने कहा है। अर्थात् मन्त्र घटक तृतीय मकार का वाच्य जीवराशि है जो मुमुक्षुओं से अवश्य ज्ञातव्य है। अन्यथा जीव के स्वरूप ज्ञान के बिना मोक्षादि शास्त्र में प्रवृत्ति नहीं होगी। तो वह म पद वाच्य जीव किस प्रकार का है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं "**ज्ञानानन्द स्वरूपः**" वह जीव ज्ञान तथा आनन्द स्वरूप ही है। न तु जड पदार्थवत् रूपरसादिमान् "**सत्यं ज्ञानमानन्दम्**" "**प्रज्ञानघनः**" इत्यादि श्रुति सिद्ध आनन्द स्वरूप है। तथा वह जीव अवगति ज्ञान तथा सुखादि गुणों का न्याय सिद्धान्तवत् अधिकरण है। "**ज्ञानाधिकरणमात्मा**" "**ज्ञोऽत एव**" इत्यादि से सिद्ध है। पुनः वह जीव अणु परिमाणवाला है। किन्तु शरीर परिमाणवान् नहीं है। नवा व्यापक परिमाणवान् है। यदि शरीर परिमाणवान् अर्थात् मध्यम परिमाणवान् माना जाय तव घटादिवत् अनित्य होने से स्वर्गमोक्षादि प्रतिपादक शास्त्र का वैयर्थ्य हो जायेगा। तथा व्यापक परिमाणवान् मानने पर व्यापक में क्रिया नहीं होती अतः जीवों का

चन्द्रलोकादिक लोकों में गमनागमन का जो प्रतिपादन किया है वह निरर्थक हो जायेगा। अतः जीव अणु परिमाणक है।

जीव को अणु परिमाणक होने में श्रुति प्रमाण है "**बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते**" "**एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश**" इत्यादि। यदि अणु परिमाणक जीव को न माने तव तो अति सूक्ष्म नाडियों में जो जीव का चलन होता है ऐसा शास्त्रों में कहा है वह बाधित हो जायगा।

तथा वह जीव शरीरेन्द्रिय मन बुद्धि प्रभृतिक प्राकृत जड़ पदर्थों से सर्वथा भिन्न है। अर्थात् जीव शरीरादि रूप नहीं है। अन्यथा शरीरादिक को अनित्य होने से जीव भी अनित्य होगा, तव, "जो मैंने वाल्यावस्था में माता पिता का अनुभव किया, वही मैं अभी पौत्र दौहित्र का अनुभव करता हूँ" ऐसा अनुसन्धान नहीं होगा, इसलिए जीव देहादि से भिन्न है। पुनः यह जीव बद्ध मुक्त नित्यसूरि भेद से अनेक हैं। इस विशेषण से एकात्मवाद का खण्डन करने के तरफ आचार्यजी का आशय प्रतीत होता है। यदि जीव को एक माना जाय, तव अमुक जीव बन्धन में है, अमुक जीव मुक्त है, अमुक जीव नित्यमुक्त है। यह जो विभाग श्रुति पुराणादिक में आया है वह प्रमत्त गीत प्राय हो जायगा। अतः जीवानेकवाद ही शास्त्र सम्मत है। एवं बद्ध जीवों में एकता माना जाय, तब जन्म मरण अन्धत्वादिक की व्यवस्था नहीं होगी। यहाँ, "**जन्ममरण करणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च। पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्य विपर्ययाच्चैव**" इत्यादि सांख्यकारिकोक्त युक्ति का भी अनुसरण करना चाहिए।

पुनः यह जीव तत्प्रिय है। अर्थात् परमात्मा का अत्यन्त प्रियहै। "**प्रियोहि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः**" इस गीता वचन के अनुसार जीव परमात्मा का परम प्रिय है। पुनः यह जीव परमात्म सहाय है। अर्थात् परमात्मा है, सहायक जिसंका एतादृश जीव है जो कि परमात्मा का अनुचर सेवक है। तथा मवाच्य जो जीव है वह नित्य है न तु करण कलेवरवत् अनित्य है। क्योंकि "**देहीनित्यमवध्योयं देहे सर्वस्य भारत**" "**नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः**" "**नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः**" "**अजोह्येकोजुषमाणोऽनुशेते**" "**हन्ताचेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्**" **उभौ तौ न विजानीतोनायं हन्ति न हन्यते**" इत्यादि श्रुतिस्मृति प्रमाणों से सिद्ध होता है कि जीव नित्य त्रिकाल में रहनेवाला है। और यह जीव

स्वयं प्रकाश है। **"अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति"** यह श्रुति कहती है कि जीव स्वयं प्रकाश है स्वकीय स्वरूप के प्रकाशन करने में स्व प्रकाश है। और विषय का प्रतिपादन करने में इन्द्रियादि जनित धर्म ज्ञान सापेक्ष है। हे सुरसुरानन्द ? ऐसा महर्षियों ने मकार वाच्य जीव के स्वरूप को बतलाया है। तुम भी इसीप्रकार जीव स्वरूप को जानो ॥१०॥

मवाच्योऽहं रवाच्याय शेषभूतोऽस्मि सर्वदा ।
इतीत्थमेवबोध्यो ज्ञैर्वाक्यार्थस्तद्विवित्सया ॥११॥

बीज घटक प्रत्येक पद का अर्थ बतला करके इस श्लोक से सम्पूर्ण वाक्य के अर्थ को बतलाते हैं। क्योंकि वाक्यार्थ बोध में पदार्थ ज्ञान को कारणत्व होता है। पदार्थ ज्ञान होने के वाद ही वाक्यार्थ बोध होता है। क्योंकि शब्द बोध में पदज्ञान कारण होता है। तथा पदजनित पदार्थ ज्ञान व्यापार होता है। तथा शक्त्यादि रूप वृत्ति सहकारी कारण है। तव शब्द बोध रूप कार्य होता है। हे सुरसुरानन्द ? सम्पूर्ण श्रीराम तारक मन्त्रराज का वाक्यार्थ जानने के लिए या शिष्यादि को जनाने के लिये महर्षि पराशरादिक महापुरुषों ने बीज के वाक्यार्थ को इस वक्षमाण प्रकार से कहा है **"मवाच्योहम्"** म पद वाच्य में अधिकारी जीव 'र' पद वाच्य सर्वशेषी परमात्मा भगवान् श्रीरामजी का शेषरूप हूँ। जैसे चन्दन वनमाला प्रभृति उपभोग्य वस्तुओं का भगवान् यथेष्ट विनियोग करते हैं उसी तरह भगवान् के उपभोगार्ह मैं भी हूँ। इस तरह प्रत्येक जीवों को परमात्मा का शेष अपने को समझना चाहिए। हे सुरसुरानन्द तुम भी अपने को ऐसा ही मानो ॥११॥

रामायेति चतुर्थेन श्रियादेव्यास्तु सर्वदा ।
चेतनाऽचेतनानां च रमणाश्रयतेर्यते ॥१२॥

अव आचार्य **"रामाय"** इत्याकारक जो चतुर्थ पद है, उसके अर्थ को बतलाते हुए कहते हैं **"रामायेति चतुर्थेन"** इत्यादि। हे सुरसुरानन्द ? पूर्वकालिक महर्षियों ने-मन्त्रघटक चतुर्थी विभक्त्यन्त चतुर्थ पद से विदेहजा श्रीसीताजी तथा समस्त जडचेतनात्मक हिरण्यगर्भ से लेकर के कीट पतंग स्थावरात्मक प्रपञ्च को अति विलक्षण भोग्यवस्तु देने के कारण भगवान् श्रीरामजी में रमणाश्रयत्व को प्रतिपादन किया है। यह **"रामो रमयतां वरः"** इत्यादि वचनों से सिद्ध होता है ॥१२॥

स सर्वविधबन्धुत्वं सर्वप्राप्यत्वमेव च ।

सर्वप्रापकता तेन तथा चोभयलिङ्गता ॥१३॥

हे सुरसुरानन्द ? चतुर्थ्यन्त मन्त्र घटक जो चतुर्थ **"रामाय"** पद है उससे सर्वान्तर्यामी होकर के सकल स्थावर जङ्गमात्मक प्रपञ्च को आनन्द देनेवाले भगवान् का बोधक रामाय इस पद से भगवान् श्रीरामजी में सर्व प्रकारक बन्धुत्व सर्व प्राप्यत्व तथा सर्वमोक्षादि फल प्रापकत्व बोधित होता है ऐसा ऋषि लोग कहते हैं। तथा उसी चतुर्थ्यन्त रामाय इस पद से भगवान् श्रीरामजी में उभयलिङ्गत्व भी प्रतिपादित होता है। अर्थात् सर्वान्तर्यामी होने के कारण सर्वत्र अवस्थित होने पर भी भगवान् में प्राकृत सकल दोष रहितत्व तथा सकल हेय प्रत्यनीक मङ्गल गुणाकरत्व रूप उभय लिङ्गत्व भी सिद्ध होता है ॥१३॥

उच्यते तत्पदेनैव सच्चिदानन्दरूपता ।

यावद्विभूतिनेतृत्वं श्रीरामब्रह्मणो मतम् ॥१४॥

"रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि । इति रामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते" (जिस अनन्त सच्चिदानन्द परमात्मा में योगी लोक रमण करते हैं। इस कारण से रामपद से परम ब्रह्म परमात्मा ही कहे जाते हैं।) एतदर्थक रामाय इस चतुर्थ्यन्त रामपद से परब्रह्म श्रीरामजी में सच्चिदानन्दत्व का कथन किया जाता है। एवं **"सत्यं ज्ञानमानन्दं ब्रह्म"** इत्यादि अनेक श्रुति स्मृत्यादि सिद्ध सच्चिदानन्द रूपता का श्रीरामजी में चतुर्थ्यन्त रामाय पद से बोधित होता है। तथा लीलाविभूति सहित त्रिपाद विभूति का नायकत्व भी रामाय पद से श्रीरामजी में कहा जाता है ॥१४॥

रागादि कारणे बन्धो तेनैव विनिवर्त्त्यते ।

बन्धुत्त्व प्रतिपत्तिश्च भासमाना विचारतः ॥१५॥

हे सुरसुरानन्द ? रागादि के कारण से माता पिता पुत्र कलत्रादिक स्वजनों में विचार के बिना अर्थात् अज्ञान मूलक जो बन्धुत्व स्वकीयत्व ज्ञान है वह भगवान् श्रीरामजी में सर्व प्रकारक बन्धुत्व प्रतिपादक रामाय इस चतुर्थ्यन्त पद से विनिवृत्त हो जाता है अर्थात् भगवान् श्रीरामजी ही सर्वप्रकारक बन्धु हैं इसका प्रतिपादक रामाय पद से अविचार द्वारा जायमान कलत्रादि में बन्धुत्व व्यापार निवृत्त हो जाता है ॥१५॥

तच्चतुर्थ्या सानुरूपकैङ्कर्यप्रार्थनोच्यते ।
विषयान्तरसेवापि प्राप्ता सा विनिवर्त्त्यते ॥१६॥

रामाय घटक प्रकृति भूत रामपद से भगवान् श्रीरामजी में सर्वविध बन्धुत्व का तथा तदन्य माता-पिता में रागप्राप्त बन्धुत्व की निवृत्ति का प्रतिपादन करके तदनन्तर श्रीरामपदोत्तर श्रूयमाण चतुर्थी विभक्ति से जिस वस्तु का प्रतिपादन होता है उस वस्तु का प्रतिपादन करने के लिए उपक्रम करते हैं "**तच्चतुर्थ्या सानुरूपेत्यादि ।**" श्रीराम पदोत्तर श्रूयमाण चतुर्थी विभक्ति से अर्थात् चतुर्थ्येक वचन ङे प्रत्यय से स्वानुरूप कैङ्कर्य की प्रार्थना का अर्थात् स्वकीय अधिकार के अनुकूल न तु प्रतिकूल परम ब्रह्म परमात्मा श्रीरामजी के अनुरूप कैङ्कर्य की प्रार्थना याचना का प्रतिपादन किया जाता है। तथा श्रीराम भिन्न ब्राह्मादिक देवों का रागवशात् प्राप्त जो सेवा तादृश सेवा का निवर्तन किया जाता है। अत एव भगवान् के अनन्य प्राचीन कालिक तथा वर्तमान में भी अनेकों महात्मागण ब्रह्मादिक देवों की तो क्या कथा ? माता-पिता की रागतः प्राप्त सेवा का परित्याग करके प्रव्रजित हो गये तथा होते हैं। तदुक्तं "**प्रव्रजन्त्यकृतोद्वाहा परवैराग्यमाश्रिताः**" इत्यादि। अर्थात् 'रामाय' यहाँ चतुर्थी विभक्ति जो है वह श्रीरामातिरिक्त वस्तु में प्राप्त सेवा की निवृत्ति का प्रतिपादन करती हुई सार्थिका होती है। इस विषय का विशेष निरूपण अन्यत्र किया जायेगा यहां केवल निदर्शन मात्र है ॥१६॥

पदेन नेनात्रतु पञ्चमेन प्रकथ्यतेऽथो तदनन्यशेषता ।
हेयं तदन्यार्थ्यमपि स्वतन्त्रता निवर्त्यतेऽतःसततं स्वकीया ॥१७॥

षडक्षर महामन्त्र घटक 'नमः' यहां पांचवाँ अक्षर जो 'न' है उसका अर्थ बतलाने के लिए उपक्रम करते हैं "**पदेन नेनात्र तु पञ्चमेन**" इत्यादि ।

हे सुरसुरानन्द प्राचीन महर्षियों ने पाँचवाँ पद जो "न" है उससे जीव को परब्रह्म भगवान् श्रीरामजी के तदनन्य शेषता रूपसे एकमात्र विनियोग के योग्य कहा है। तथा उनसे अतिरिक्तों के प्रयोजन को त्याज्य बतलाया है। इसलिए स्वकीय स्वतन्त्रता का सर्वदा निराकरण किया है। अर्थात् जीव की स्वतन्त्रता नहीं है ॥१७॥

पदेन षष्ठेन म इत्यनेन स्वस्वाम्यनन्यार्हकशेषतापि ।
समुच्यते चेतन वाचिना तु तत् किङ्करत्वैकफलत्वमेव ॥१८॥

हे सुरसुरानन्द ? प्राचीन आचार्य लोग चेतन जो जीव तादृश जीव का वाचक जो छठवाँ "मः" पद उससे जीव मात्र को भगवान् श्रीसीतानाथजी का कैङ्कर्यत्व सेवकत्व ही एक मुख्य फल-प्रयोजन है ऐसा मानते हैं। इसी को स्व स्वामिभाव निरूपित अनन्यार्ह शेषता कहते हैं। अर्थात् यह जो जीव है वह अन्य का नहीं किन्तु केवल भगवान् श्रीरामजी का ही विनियोग्य है ॥१८॥

उपायार्थपरेणासावखण्डनमसोच्यते ।

उपायो हि मवाच्यस्य रवाच्यो राम एव सः ॥१९॥

नमः शब्द को सखण्ड भी माना जाता है तथा अखण्ड भी माना जाता है। इसमें नमः शब्द को सखण्ड अर्थात् न अलग पद है तथा मस् अलग पद है। उसमें न पद पाँचवाँ है मस् पद छठा है। इसमें सखण्ड न मः पद के अर्थ को बतला करके अखण्ड 'नमः' पद का क्या अर्थ है उसको बतलाते हैं **"उपायार्थ परेण"** इत्यादि। हे सुरसुरानन्द ? उपायार्थ परक साधन रूप अर्थ का वाचक अखण्ड नमः पद से सव का प्रतिपालक रक्षक भगवान् श्रीरामजी को ही 'म' पद प्रतिपाद्य जीव का उपाय कहते हैं। अर्थात् जीव का जितना कोई कार्य है ऐहिक वा पारलौकिक उन सवका साधन भगवान् श्रीरामजी ही हैं ऐसा प्राचीन महर्षि लोग कहते हैं ॥१९॥

बीजेनैवाथजीवस्य स्वरूपं प्रतिपाद्यते ।

रामायेति परस्यापि चतुर्थ्या तत्फलस्य च ॥२०॥

उपायस्य त्वखण्डेन नमः खण्डेन चोच्यते ।

सखण्डेन मकारेण षष्ठ्यन्तेन विरोधिनः ॥२१॥

हे सुरसुरानन्द महर्षियों ने कहा है कि षडक्षर जो "रां रामाय नमः" मन्त्रराज है तद्घटक जो 'रां' इत्याकारक बीज है तादृश बीज से जीव के स्वरूप का प्रतिपादन होता है। तथा 'रामाय' में जो प्रकृति रूप रामपद है तादृश रामपद से परब्रह्म परमात्मा श्रीरामजी के स्वरूप का प्रतिपादन होता है। और रामपदोत्तर विद्यमान जो चतुर्थी विभक्ति है उससे जीव द्वारा सम्पादित जो शुभाशुभ कर्म है उनके फल के स्वरूप का प्रतिपादन होता है। तथा अखण्ड नमः पद से उपाय का भगवत् प्राप्ति में जो साधन हैं भक्ति प्रपत्ति वगैरह उनके स्वरूप का प्रतिपादन किया जाता है। और 'नमः'

पद के सखण्डता पक्ष में 'नमः' पद घटक षष्ठ्यन्त मकार से भगवान् की प्राप्ति में जो विरोधी अहंकार मकार हैं उनका स्वरूप प्रतिपादित होता है ॥२०-२१॥

तात्पर्यार्थोऽशेषवेदशास्त्राभिरुचिसंश्रयः ।
वाक्यार्थः प्राप्यसम्बन्धिः स्वरूपाभिनिरूपणम् ॥२२॥
तारकस्य प्रधानार्थः स्वस्वरूपनिरूपणम् ।
सम्बन्धस्यानुसन्धानमनुसंध्यर्थ इष्यते ॥२३॥

गत प्रकरण से तारक मन्त्रराज, "रां रामाय नमः" इसके छ पदार्थ का तथा पाँच संक्षिप्त पदार्थ का निर्वचन करके अग्रिम श्लोक द्वय से तारक मन्त्रराज का तात्पर्यार्थ वाक्यार्थ प्रधानार्थ तथा अनुसन्धानादिक अर्थ को बतलाने के लिए उपक्रम करते हैं **तात्पर्यार्थ** इत्यादि हे सुरसुरानन्द ? महर्षि लोग कहते हैं कि-सकल वेद तथा तदनुयायि शास्त्र हितानुशासकों की जो अभिरुचि है तादृश अभिप्राय विशेष का आश्रय ही मन्त्रराज का तात्पर्यार्थ है। अर्थात् सकल वेद स्मृति इतिहास पुराणों का पर्यवसान जिसमें है वही षडक्षर मन्त्र का तात्पर्यार्थ है। और परम प्राप्य सर्वेश्वर श्रीरामजी षडक्षर तारक महामन्त्र का वाक्यार्थ हैं। तथा जीव का जो देहादि विलक्षण स्वरूप है उसका समुचित रूपसे प्रतिपादन करना यही मन्त्रराज का प्रधान अर्थ है। एवं जीवात्मा तथा परमात्मा का जो अनेक प्रकारक शेषशेषीभावादिक पूर्व प्रदर्शित सम्बन्ध हैं, उन सम्बन्धों का अनुसन्धान करना ही मन्त्रराज का अनुसन्धेयार्थ है। इसप्रकार से प्राचीनाचार्य लोग निरूपण करते हैं ॥२२-२३॥

अथ मन्त्ररत्नरहस्यम्

उक्त्वेत्थं तारकार्थं तु द्वयार्थः प्रतिपाद्यते ।
विमत्सराः प्रपश्यन्तु प्रगृह्णन्त्ववयन्तु च ॥२४॥

परमपूज्य चरण श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज **"जाप्यस्तत् तारकाख्य"** यहाँ से प्रारम्भ करके, तारक प्रधानार्थ **"एतत्पर्यन्त"** प्रकरण से षडक्षर मन्त्र का विशद व्याख्यान करके तदनन्तर **"श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमते रामचन्द्राय नमः"** इस द्वय मन्त्र का विस्तृत व्याख्यान करने के लिए उपक्रम करते हैं **"उक्त्वेत्थम्"** इत्यादि। हे सुरसुरानन्द ? **"जाप्यस्तत् तारकाख्यः"** यहाँ से लेकर

"तारकस्यप्रधानार्थः" एतदन्त श्लोकों से षडक्षर "रां रामाय नमः" इस मन्त्रराज के अर्थ का प्रतिपादन किया अब द्वयमन्त्र "श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमते रामचन्द्राय नमः" के अर्थ का मैं प्रतिपादन करता हूँ। अतः विमत्सर रागद्वेष रहित होकर के द्वय मन्त्र के अर्थ को जानो तथा जान करके उस मन्त्र का ग्रहण करो और उस मन्त्र से प्रतिपाद्य इष्टदेव का ध्यान करो मन्त्र का निरन्तर जप करो अर्थात् श्रवण मनन निदिध्यासन करो ॥२४॥

श्रीरामद्वयमन्त्रमद्भुततमं वाक्यद्वयंषट्पदम्
वाणाक्षिप्रमिताक्षरन्तु खलु विद्धित्वंदशार्थान्वितम् ।
युक्तं तत् त्रिपदैस्तु तत्र सुमते पूर्वं शुभस्यास्पदं
वाक्यं पञ्चदशाक्षरं तदनुदिग्वर्णात्मकं तूत्तरम् ॥२५॥

इसके वाद द्वय मन्त्र घटक तत्तद्वर्ण तथा वर्ण समुदाय पद के अर्थ को बतला करके मन्त्र में अवश्य ग्राह्यत्व को बतलाने के लिए कहते हैं **श्रीरामद्वयमन्त्रेत्यादि** हे सुतीक्ष्ण बुद्धिक सुरसुरानन्द ? सकल श्रुतिस्मृति प्रभृतिक शास्त्र समुदाय के वास्तविक अभिप्राय को जानने वाले साम्प्रदायिक महापुरुष कहते हैं कि दो वाक्य छः पद पञ्चविंशति वर्णों से द्वय मन्त्र युक्त है। और जिस में श्रीसीताजी पुरुषकार का अर्थ रूप से है। उनका भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के साथ में नित्य सम्बन्ध है। इत्यादि दश अर्थ से युक्त है। तो परमकारण भगवान् के चरणकमल में मन को लगा देने के कारण बहुत शीघ्र अधिकारी को अत्याश्चर्योत्पादक इस द्वय मन्त्र से निदर्शन प्राप्त हो जाता है ऐसा महर्षिगण ने कहा है।

जिस भगवान् श्रीरामजी के आश्चर्य जनक द्वयमन्त्र में दो वाक्य है उन में से एक तो "**श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये**" यह है। तथा द्वितीय वाक्य है "**श्रीमते रामचन्द्राय नमः**" इन द्वयमन्त्र में जो प्रथम वाक्य है वह शुभगुण-मोक्ष का आश्रयस्थान है। तीन पद से युक्त है तथा पन्द्रह अक्षर वर्णवाला है। तथा जो द्वितीय वाक्य है वह भी तीन पद तथा दश अक्षरवाला है। शुभगुण मोक्ष का स्थान आश्रय है ऐसा तुम समझो, इसमें श्रद्धा करो ॥२५॥

सर्वाधीशेश्वरस्याप्तिर्हतुरत्राभिधीयते ।
सीतापुरुषकारार्था श्रीत्यनेन पदेन तु ॥२६॥

वाक्यार्थ बोध शाब्द बोंध में पदार्थ बोध कारण होता है। क्योंकि पद ज्ञान द्वारा जब तक पदार्थ का कंबुग्रीवादिमत्वादि रूप अर्थ का स्मरण नहीं होता है तब तक पद समुदाय रूप "**घटमानय**" इत्यादि वाक्य से घटानयनादि कार्य को मध्यम वृद्ध नहीं जान सकता है। इसलिए वाक्यार्थ बोध में कारणीभूत पदार्थों का स्मरणादि रूप ज्ञान के उत्पादन करने के लिए प्रथमतः आचार्यजी उस बात को जानने के लिए उपक्रम करते हैं "**सर्वाधीश**" इत्यादि। हे सुरसुरानन्द ? सर्वेश्वर श्रीरामजी का जो द्वयमन्त्र है उसमें सर्वप्रथम जो श्री पद है उस श्री पद से सर्वाधीश ब्रह्मा विष्णु महेशादिक जीवों का अधीश्वर श्रीरामचन्द्रजी हैं उनकी प्राप्ति करने में कारण पुरुषार्थ स्वरूप श्रीसीतादेवीजी के स्वरूप का वर्णन किया जाता है। इसप्रकार से प्रथम पद के अर्थ को निर्वचन किया गया है ॥२६॥

मता पुरुषकारस्य नित्य सम्बन्ध उच्यते।
रामचन्द्रेति पदतो वात्सल्यादि गुणस्य च ॥२७॥

हे सुरसुरानन्द ? द्वय श्रीराममन्त्र घटक जो प्रथम मन्त्रान्तर्गत श्रीपदोत्तर में विद्यमान मतुप् प्रत्यय है उस मतुप् प्रत्यय से पुरुषकार स्वरूप जो भगवती श्रीसीताजी हैं, उन सीताजी का भगवान् दशरथनन्दन श्रीरामजी के साथ जाति व्यक्ति के समान नित्य सम्बन्ध है। यहाँ मतुप् प्रत्यय नित्य योगार्थक है। और "**श्रीरामचन्द्रचरणौ**" यहाँ जो "रामचन्द्र" पद है, इस रामचन्द्र पद से भगवान् सर्वेश्वर परमात्मा श्रीकोसलेन्द्र सरकार में वात्सल्यादि अनन्त कल्याण गुणों का नित्य सम्बन्ध है, ऐसा ऋषि लोग कहते हैं। यहाँ वात्सल्यादि पद से वात्सल्य स्वामित्व सुशीलता अति सुलभता सर्वज्ञत्व सर्वशक्ति दया कृपा अनुकम्पा करुणा सौहार्द और क्षमा इत्यादि जो भगवान् का अनन्त कल्याण गुण समुदाय हैं उन सवका आदि पद से ग्रहण होता है। इसमें वात्सल्य शब्द का यह अर्थ होता है कि-जो भगवान् श्रीरामजी के आश्रित व्यक्ति है उनके अन्दर जो क्रूरत्व मूर्खता जाति से नीचता प्रभृतिक दोष हैं, उनकी स्मरण न करना ऐसा श्रीमद्रामायण में कहा है-"**न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया**" इत्यादि। अथवा स्वाश्रित व्यक्तिगत जो अपराध है तादृश अपराध में तिरस्कार बुद्धि को वात्सल्य कहते हैं ऐसा कहा है। "**अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इवद्विज ?। साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्त जनप्रियः**" इत्यादि। इसी तरह

सौशील्य, सौहार्द क्षमादिक भगवान् के गुणों का साम्प्रदायिक महापुरुषों से जानना। यहाँ संक्षेप किया गया है ॥२७॥

चरणावित्यनेनैव वात्सल्यादिकसीतयोः ।
विलक्षणस्य दिव्यस्य विग्रहस्याश्रयस्य च ॥२८॥

हे वत्स ? **चरणौ** पद से वात्सल्यादिक अनन्तगुण तथा श्रीसीताजी का आश्रय रूप श्रीरामचन्द्रजी का विलक्षण अनन्त दिव्य श्रीविग्रह है उसका एकत्व प्रतिपादन किया जाता है ऐसा श्रीवशिष्ठ प्रभृतिक पूर्वाचार्य का मत है ॥२८॥

शरणेतिपदेनैवोपायस्तद्विग्रहो बुधैः ।
उपायाध्यवसायस्तु प्रपद्य इति वर्ण्यते ॥२९॥

हे सुरसुरानन्द ? द्वयमन्त्र घटक **"शरण"** इस पद से परमात्म स्वरूप भगवान् श्रीकोसलेन्द्र सरकार के विग्रह शरीर को प्राप्य श्रीरामजी की प्राप्ति का उपाय विद्वान् लोग कहते हैं। यद्यपि स्वप्राप्ति का उपाय स्वहो ऐसा देखने में अन्यत्र नहीं आता है। तथापि भगवद्विग्रह की भगवत् प्राप्ति में उपाय कथन का यह अभिप्राय है कि भगवत् स्वरूप का जो अनुचिन्तन है, वह भगवत् प्राप्ति में उपाय है-प्रापक है। योगसूत्रकार ने कहा है-**"यथाभिमतध्यानाद्वा"** **"तज्जपस्तदर्थानुभावनम्"** इति। और मन्त्र में जो **"प्रपद्ये"** इत्याकारक क्रिया पद है उस क्रिया पद से तादृश उपाय का अर्थात् परमात्मा स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी के प्रापक जो भगवद्विग्रह है उस विग्रह का दृढ निश्चयकर भगवान् के स्वरूपानुचिन्तन ही प्राप्ति का साधन है, एतादृश अविपरीत निश्चय ही प्राप्ति कारण है ऐसा जो ज्ञान उसको प्रपद्ये पद बतलाता है। ऐसा प्रचीन श्रीपराशरादिक विद्वान् महापुरुषों ने कहा है ॥२९॥

प्राप्यं मिथुनमेवेति श्रीमते पदतो मतम् ।
रामचन्द्रेति पदतः स्वामित्वं प्रतिपाद्यते ॥३०॥

प्रिय शिष्य द्वितीय मन्त्र घटक **श्रीमते** चतुर्थ्यन्त इस पद से श्रीसीतारामजी युगलमूर्ति स्वरूप ही प्राप्य हैं, अर्थात् अशेष साधनों से प्राप्य हैं, ऐसा महर्षिगण कहते हैं। भगवान् श्रीसीतारामजी के विग्रह का चिन्तन उपाय है। तथा तादृश विशिष्ट ज्ञानानन्दादिमय जो स्वरूप है वह प्राप्य है, और **रामचन्द्र** पद से भगवान् श्रीरामजी

में सर्व जीव निरूपित स्वामित्व है ऐसा प्रतिपादित होता है। ऐसा प्राचीन आचार्यों ने कहा है जो कि श्रुत्यादि समर्थित है ॥३०॥

विभक्त्यायेति पदतः शेषवृत्तिर्महात्मभिः ।
विरोधिनो निरासस्तु नमः पदेन वर्ण्यते ॥३१॥

महर्षि लोग "रामचन्द्राय" में जो आय है अर्थात् रामचन्द्र इस ~~प्रकृ~~ति से विहित जो चतुर्थी एक वचन ङे विभक्ति है तादृश ङे के स्थान में आदिश्यमान व्याकरण परिभाषा से "आय" है, उससे सर्वशेषी भगवान् वा शेष रूप जो जीव समुदाय हैं उन जीवों के व्यापार का प्रतिपादन किया जाता है। ऐसा मुनि लोग कहते हैं। और मन्त्र का जो चरमपद **नमः** शब्द है, उस नमः पद से भगवान् की प्राप्ति होने में जो विरोधी अहंकार ममकार से जायमान क्रोध कामादिक पदार्थ हैं उन कामादिकों के अभाव का प्रतिपादन किया जाता है। क्योंकि कार्यमात्र के प्रति प्रतिबन्धकाभाव कारण होता है। अतः जवतक प्रतिबन्धक रहता है तवतक कार्य नहीं होता है। ऐसा दाहादि स्थल में मणि विगेरे को देखा गया है। इसलिए भगवत् प्राप्ति विरोधी के अर्थात् कामादिकों का अभाव का प्रतिपादक नमः पद है ऐसा मुनि लोगों ने कहा है ॥३१॥

तात्पर्यार्थोस्य विज्ञेय आचार्यरुचिसंश्रयः ।
वाक्यार्थो मन्त्ररत्नस्य त्वथ निर्णीयते बुधैः ॥३२॥
प्राप्यप्रापकसम्बन्धस्वरूपाभिनिरूपणम् ।
प्रधानार्थस्तु तद्युग्मकैङ्कर्यस्य प्रधानता ॥३३॥
स्वदोषाभ्यनुसंधानमनुसंध्यर्थ उच्यते ।
एवमेवानुसंध्येयं मोक्षकामैरहर्दिवम् ॥३४॥

भगवान् श्रीरामजी जगत् कारण सर्वज्ञ का जो द्वय मन्त्ररत्न है उस मन्त्र का स्वरूपतया तद्घटक पदों का अर्थ कहकर अग्रिम श्लोकत्रय से द्वय मन्त्र का तात्पर्यार्थ वाक्यार्थ प्रधानार्थ तथा अनुसन्धानार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करने के लिए उपक्रम करते हैं-**"तात्पर्यार्थोऽस्य"** इत्यादि। हे सुरसुरानन्द ? सम्प्रदाय को विशेष रूपसे जाननेवाले विद्वान्, आचार्यजी की जो आज्ञा है तादृश आज्ञा का पालन करना ही इस द्वय मन्त्र का तात्पर्यार्थ है ऐसा कहते हैं तथा परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी तथा शेष लक्षण

जीवात्मा का जो सम्बन्ध है उस सम्बन्ध का तथा स्वरूप का निरूपण करना यही इस द्वयमन्त्र का वाक्यार्थ है। श्रीसीताराम रूप जो युगल मूर्ति हैं उनके सेवा की प्रधानता ही प्रधानार्थ है ऐसा कहते हैं। तथा जीव स्वकीय सकल दोषों का पूर्ण रूपसे अनुसन्धान करे, यही द्वयमन्त्र का अनुसंधेयार्थ है ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। जो मोक्ष कामनावाले व्यक्ति हैं उन लोगों से इसी प्रकार से यह द्वय मन्त्र अनुसन्धान करने के योग्य है अर्थात् जप करने के योग्य है। यह मोक्ष यद्यपि मतभेद से अनेक प्रकारक है तथापि **"विष्णोरनुचरत्वं हि मोक्षमाहुर्मनीषिणः"** इस वचन के अनुसार श्रीपराशरादि मुनि लोग सर्वेश्वर श्रीरामजी का कैङ्कर्य को ही मोक्ष कहते हैं। अतः कैङ्कर्यत्व लाभ ही मोक्ष है। यद्यपि सालोक्य, सामिप्य, सारुप्य और सायुज्य नामक चार मोक्ष का प्रकार है तथापि इन चारों में कैङ्कर्य की ही प्रधानता रहने से भगवान् श्रीरामजी की निरन्तर सेवा ही परममोक्ष है ऐसा महर्षि लोग कहते हैं इति संक्षेपः ॥३२/३३/३४॥

☬ अथ चरममन्त्ररहस्यम् ☬

प्रोक्ता वत्सक ? मन्त्ररत्नविवृतिः सन्मानसाभिष्टदं-
सद्वेद्यं सकृदित्यवेहि चरमं निर्णीतवाक्यार्थकम्
रामीयं हि तदीय मन्त्रनिरतैरुद्बोधनीयं परं-
द्वात्रिंशत्प्रमिताक्षरं मनुपदं द्व्यद्र्ध जगद्विश्रुतम् ॥३५॥

पूर्व कथित प्रकार से द्वितीय रहस्य का विवेचन करके तदनन्तर वक्ष्यमाण श्लोकों से तृतीय रहस्य विवेचन करने के लिए आचार्यश्री उपक्रम करते हैं **"उक्ता वत्सक"** इत्याकारक। हे वत्सक सुरसुरानन्द ? मन्त्ररत्न द्वय श्रीराममन्त्र का व्याख्यान हो गया। और **"सकृदेव प्रपन्नाय"** इत्यादिक जो चरम मन्त्र है जो कि बत्तीस वर्ण चौदह पंदों से तथा पूर्वाद्र्ध उतराद्र्ध दो खण्डो से प्रमीत युक्त है। सज्जन पुरुषों के मनोभिलषित फलको देनेवाला है एवं सज्जन महापुरुषों से ही जानने के लायक है। और जिसका वाक्यार्थ निर्णीत है। एतादृश मन्त्ररत्न को तुम सुनो ? श्रीराममन्त्र में निरत परमभक्त को ही इसका उपदेश देना इतर को नहीं ॥३५॥

अत्रोपायान्तरस्याथो निवृत्तिः प्रतिपाद्यते।
सकृदित्येवकारेण तूपायनिरपेक्षता ॥३६॥

चरम मन्त्र घटक पदों का विचार करके तदनन्तर तत्तत्पदार्थों का विचार करने के लिए उपक्रम करते हैं "**अत्रोपायान्तरस्य**" इत्यादि। अथ वर्ण पद का विचार करने के वाद इस चरम मन्त्र घटक **सकृत्** इस पद से प्रपत्तिभिन्नोपाय यागादिकों की निवृत्ति का प्रतिपादन किया जाता है। तथा द्वितीय पद जो **एवकार** है उससे अन्य देवोपासन यागादिकों का निरपेक्षत्व बतलाया जाता है अर्थात् सर्वोपाय निरपेक्ष प्रपत्ति मात्र सर्वेश्वर श्रीरामजी की प्राप्ति में कारण है ॥३६॥

प्रपन्नायेति पदतस्तूपायस्थानमुच्यते।
उपायत्वं भगवतस्तवेति पदतस्तथा ॥३७॥

चरम मन्त्र घटक जो तृतीय पद **प्रपन्नाय** है तादृश तृतीय पद से उपाय अर्थात् वक्ष्यमाण जो छः प्रकार की शरणागति है उसके स्थान-आश्रय का प्रतिपादन किया जाता है। तथा षष्ठ्यन्त तव इत्याकारक चतुर्थ पद से परमात्मा श्रीकोसलेन्द्र सरकार को ही उपाय रूपसे कथन किया जाता है ॥३७॥

अस्मीत्यनेन चोपायस्वीकारः प्रतिपाद्यते।
समाप्त्यर्थेति शब्देन तूपायानन्यतोच्यते ॥३८॥

हे सुरसुरानन्द ? श्रीसम्प्रदाय के वास्तविक स्वरूप को जाननेवाले जो विद्वान् महापुरुष हैं वे लोग "**अस्मि**" इत्याकारक मन्त्र घटक पञ्चम पद से भगवत् प्राप्ति के उपाय के स्वीकार को कहते हैं। और समाप्ति अर्थ का वाचक जो **इति** शब्द छठवाँ है उस षष्ठ पद से प्रपत्ति अर्थात् शरणागति की अनन्यता को कहते हैं। अर्थात् शरणागति व्यतिरिक्त उपायान्तर का निषेध कहा जाता है ॥३८॥

चकारतोऽनुक्तसमुच्चयार्थतो निगद्यते त्वन्य उपाय आत्मवित्।
उपायसंसेव्यधिकारिलक्षणं पदेन वै याचत इत्यनेन तु ॥३९॥

हे आत्मज्ञानी सुरसुरानन्द ? साम्प्रदायिक श्रीसम्प्रदायानुयायी विद्वान् लोग कहते हैं कि अनुक्त समुच्चयार्थक अकथित अर्थ को भी समझाने वाला जो श्लोक घटक सप्तम **च** पद है उससे त्रिविध प्रपत्ति (प्रपत्ति तीन प्रकार की है मानसिक, वाचिक तथा कायिक) के अन्तर्गत प्रथम मानसिक प्रपत्ति शरणागति रूप उपाय है उसका प्रतिपादन किया जाता है।

तथा श्लोक में जो "**याचते**" इत्याकार अष्टम पद है तादृश अष्टम याचते पद से तीनों प्रकार के मानसिक कायिक तथा वाचिक शरणागति रूप उपाय का भी समीचीन रूपसे अनुष्ठान करने वाले जो अधिंकारी हैं तादृश अधिकारी के स्वरूप का प्रतिपादन होता है ॥३९॥

अथाभयमितिप्राप्तिप्रतिबन्धकवारणम् ।

सर्वभूतेभ्य इत्येव प्राप्यस्य प्रतिबन्धकम् ॥४०॥

मन्त्र घटक अष्टम पद के व्याख्यान करने के वाद नवम पद जो "**अभय**" उसका व्याख्यान करने के लिए कहते हैं "**अथाभयमिति**" इत्यादि । "**अभयम्**" इत्यादि नवम पद से भगवान् श्रीरामजी की प्राप्ति करने में जो प्रतिबन्धक हैं काम क्रोधादिक उनका निवारण किया जाता है। तथा "**सर्वभूतेभ्यः**" इत्याकारक जो दशम पद है उससे सर्वभूत को सर्वप्राणी को ही भगवत् प्राप्ति में प्रतिबन्धक विरोधक कहा जाता है-अर्थात् कामक्रोध, लोभ, मोह, इर्ष्यादि नीच वृत्ति आसुरी वृत्तियों से युक्त समस्त प्राणी जीवराशि ही भगवत् प्राप्ति में विरोधी है। भगवान् श्रीरामजी मुक्त कण्ठ से कहते हैं कि मैं दाशरथी राम मेरे शरण आये हुए शरणागत व्यक्तियों के प्रतिबन्धक आसुरी वृत्ति सम्पन्न व्यक्तियों से रक्षण करके सदा के लिए भय रहित कर देता हूँ मेरे शरण में आये हुए व्यक्तियों को मैं सर्वदा के लिए भय रहित बना देता हूँ। ऐसी प्रतिज्ञा जो है उसका निर्देश "**अभयं सर्वभूतेभ्यः**" इन पदों से कहा गया है ॥४०॥

ददामीतिपदेनाथोपायस्य सर्वशक्तिता

एतदित्येव पदतोऽसंशयत्वमितीर्य्यते ॥४१॥

अथ पुनः दशम पद के व्याख्यान करने से वाद एकादशवाँ जो "**ददामि**" इत्याकारक पद है उससे प्रपत्ति शरणागति रूप उपाय के फल को देनेवाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की सर्वशक्तित्व का अर्थात् सकल पालकत्व का प्रतिपादन किया जाता है। तथा **एतद्** इत्याकारक द्वादश-बारहवाँ पद है तादृश पद से स्वयं भगवान् श्रीरामजी ने पूर्वोक्त सकल अर्थ प्रतिपाद्य विषय में संशय के अभाव का प्रतिपादन किया है। अर्थात् प्रपन्न भक्त के आराधना करने से मैं उसके ऊपर प्रसन्न होकर के तादृश भक्त को पूर्वोक्त समस्त अर्थ को देता हूँ। इसमें कोई भी थोडा भी संशय का अवकाश नहीं है।

इसमें संशय क्यों नहीं है ? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् कहते हैं कि मेरा

ऐसा व्रत है अर्थात् पूर्व कथित सकल पदार्थ को देता हूँ इसमें संशय नहीं करना क्योंकि शरणागत भक्त को सकल पदार्थ देना यह हमारा व्रत-प्रतिज्ञा है । हे सुरसुरानन्द ? यह बात स्वयं भगवान् श्रीरामजी ने कही है अतः तुम इसमें दृढ निश्चयी बनो यह भाव है ॥४१॥

व्रतमेतत्पदेनाथो तद्दाढर्च्यमभिधीयते ।
निर्भरत्वानुसन्धानं ममेति प्रतिपाद्यते ॥४२॥

द्वादश पद व्याख्यान करने के वाद "**व्रतम्**" इत्याकारक जो त्रयोदश-तेरहवां पद है उस तेरहवें "**व्रत**" पद से पूर्व कथित सकल अर्थ-विषय की दृढता निश्चय का कथन किया गया है। तथा '**मम**' इत्याकारक जो चौदहवाँ पद है उससे निर्भरता के अनुसन्धान अनुचिन्तन का कथन किया गया है। निर्भरता के अनुसन्धान से यह तात्पर्य है कि भगवान् श्रीरामजी के ही ऊपर सव प्रकार का भरोसा रखो तथा भगवान् को ही धारण-पोषण करनेवाला समझो-अर्थात् श्रीरामजी को ही धारकत्व पोषकत्व रूपसे उपासक सतत अनुचिन्तन करे ऐसा ऋषियों ने कहा है ॥४२॥

तात्पर्यार्थोऽस्यविज्ञेयः शरण्यरुचिसंश्रयः ।
तत्प्रापकस्वरूपस्य वाक्यार्थोऽथनिरूपणम् ॥४३॥

अन्तिम श्लोक के तत्तत्पदार्थों का निरूपण करके तदनन्तर तात्पर्यार्थ वाक्यार्थ प्रधानार्थ और अनुसन्धानार्थ का निरूपण करने के लिए आचार्य श्री कहते हैं- "**तात्पर्यार्थोऽस्यविज्ञेयः**" इत्यादि। हे सुरसुरानन्द ? दीन व्यक्ति के रक्षा करने में समर्थ भगवान् श्रीरामजी की जो प्रसन्नता उसका अवलम्बन करना यही चरममन्त्र का तात्पर्यार्थ है। येन केन प्रकारेण भगवान् की प्रसन्नता का पात्र बनना तात्पर्यार्थ है तथा भगवान् के प्रसाद का आश्रय जो भगवान् का विग्रह है अथवा प्रपत्ति उसका निरूपण करना अथवा भगवान् के प्रापक पुरुषकार रूप जो श्रीसीताजी उनके स्वरूप का निरूपण करना यह चरम श्लोक का वाक्यार्थ है, ऐसा महर्षिगणों ने कहा है। इस वात को तुम जानो ॥४३॥

प्रधानार्थःपरेशस्य स्वरूपस्य निरूपणम् ।
निर्भरत्वानुसन्धानमनुसन्ध्यर्थ उच्यते ॥४४॥

हे सुरसुरानन्द ? इस चरममन्त्र बोधक अन्तिम श्लोक का **"आत्मानन्द मयोमलः" "सत्यं ज्ञानमानन्दं ब्रह्म"** इत्यादि श्रुतिस्मृति पुराणादि सिद्ध सच्चिदानन्द सर्वदोष रहित सकल कल्याण गुणास्पदक जो परमेश्वर श्रीरामजी का स्वरूप है तादृश ईश्वर स्वरूप का निरूपण करना यही प्रधानार्थ है ऐसा प्राचीन ऋषियों ने कहा है। तथा भगवान् श्रीसीतानाथजी ही सकल जीव का धारण पोषण रक्षणादिक करते हैं इस वात का निरन्तर अनुचिन्तन करना यही इस चरममन्त्र का अनुसन्ध्यर्थ है।

इसतरह चरम श्लोक से सकल प्रयोजन के सिद्धि के लिए परमोपाय रूप, सर्वदेश, सर्वकाल, सर्वजाति, सर्वावस्थातीत प्रपत्ति का ही कथन किया गया है। भगवत् प्राप्ति में परमोपाय रूप यह प्रपत्ति छः प्रकार की है। तथाहि **"आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा। आत्म निक्षेपकार्पण्ये षड् विधा शरणागतिः"**। इस वचन से आनुकूल्य का सङ्कल्प प्रातिकूल्य का वर्जन रक्षण विषय का विश्वास गोप्तृत्ववरण आत्मनिक्षेप और कार्पण्य यह छः प्रकार का भेद प्रपत्ति शरणागति का है। पुनः प्रपत्ति कायिक वाचिक मानसिक भेद से तीन प्रकार की है। इसका विशेष रहस्य साम्प्रदायिक तात्विक विद्वानों से जानिये। इस तरह **किं जाप्यं** यह जो श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी का द्वितीय प्रश्न था, उसका निरूपण आचार्यजी ने किया ॥४४॥

श्रीमते रामचन्द्राय नमः

द्वितीयो हि परिच्छेदो व्याक्यया पूर्णतां गतः। अनेन कोशलाधीशः प्रीयतामिति मे मतिः॥

卐 शुभं भवतु सर्वजगतः 卐

श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे द्वितीयपच्छिेदः

अथ ध्याननिरूपणात्मकतृतीयप्रकरणम्

अथोच्यते महाप्राज्ञ ? ध्यानं ध्येयस्य चिन्तनम्।
बुधैरात्मपरैर्नित्यं जितप्राणै र्जितेन्द्रियैः ॥१॥

"किं जाप्यम्" इत्याकारक द्वितीय प्रश्न का समाधान करके, **"किं ध्यानम्"** इत्याकारक तृतीय प्रश्न का समाधान करने के लिए आचार्यश्री उपक्रम करते हैं- **"अथोच्यते"** इत्यादि। हे महाप्राज्ञ सुरसुरानन्दाचार्य ? जिन्होनें इन्द्रिय के ऊपर जय प्राप्त करलिया है, तथा प्राणायाम परायण हैं। और सर्वदा परमात्मा सम्बन्धीनिरतिशय प्रेम युक्त हैं। एतादृश विद्वानों के ध्येय परमकारणरूप भगवान् श्रीरामजी का जो

अनवरत स्मरण है उसीको ध्यान कहते हैं। इस विषय को कहता हूँ सुनो ॥१॥

विकचपद्मदलायतवीक्षणं विधिभवादिमनोहरसुस्मितम् ।
जनकजादृगपाङ्गसमीक्षितं प्रणतसत्समनुग्रहकारिणम् ॥२॥
मुनिमनः सुमधुव्रतचुम्बितस्फुटलसन्मकरन्दपदाम्बुजम् ।
बलवदद्भुतदिव्यधनुः शरामहितजानुविलम्बिमहाभुजम् ॥३॥
परार्ध्यहाराङ्गदचारुनूपुरं सुपद्मकिञ्जल्कपिसङ्गवाससम् ।
लसद्घनश्यामतनुं गुणाकरं कृपार्णवं सद्हृदयांबुजाऽऽसनम् ॥४॥
प्रसन्नलावण्यसुभृन्मुखाम्बुजं जगत् शरण्यं शरणं नरोत्तमम् ।
दयापरं दाशरथिं महोत्सवं स्मरामि रामं सह सीताय सदा ॥५॥
द्विभुजस्यैव रामस्य सर्वशक्तेः प्रियोत्तम ?
ध्यानमेवं विधातव्यं सदारामपरायणैः ॥६॥

भगवान् श्रीरामजी का ध्यान करना चाहिए संसार सागर से उद्धृत होने के लिए, ऐसा कहा गया है। इसमें कीदृश श्रीरामरूप का ध्यान करना ? इस जिज्ञासा के उत्तर में आचार्यजी ध्येय स्वाभिलषित रूपको बतलाने के लिए कहते हैं- "**विकचपद्मदलायतेत्यादि** ।" हे सुरसुरानन्द ? विकसित पद्म दल प्रफुल्लित कमलदल के समान आयत लम्बायमान नेत्र-आँख हैं जिनकी, तथा जिनका मनोहर इषत् हास्य ब्रह्मा प्रभृतिक देवगण के मन को भी अतिशय मनोहारी है अर्थात् मोहित करने वाले। और जिन भगवान् श्रीरामजी का मुखकमल भगवती श्रीसीताजी के कटाक्ष से सतत देखा जाता है। प्रणाम मात्र करने से प्रपन्न व्यक्तियों के ऊपर अनुग्रह करनेवाले । तथा जिन भगवान् का चरणकमल अच्छी तरह से विकसित है तथा मुनिगण के मनरूपी मधुलोभी भ्रमणों से चुम्बित-सदा सेवित है । तथा जो भगवान् आजानुबाहु हैं । तथा एतादृश भुजाओं में अति सामर्थ्य युक्त अद्भुत आश्चर्य कार्यकारी दिव्य लोकोत्तर धनुष तथा बाण विद्यमान हैं । एवं जो भगवान् बहुमूल्य मनोहर कण्ठहार तथा अंगद केयूर विजोंठा, और नूपुर प्रभृतिक अनेक आभूषणों से युक्त हैं। एवं कमल किंजल्क की तरह पीत वस्त्र से सर्वदा सुशोभित हैं, और जिन भगवान् का श्रीविग्रह शरीर आषाढ़ मासिक नीलमेघ की तरह श्यामल है । श्रीतुलसीदासजी

ने भी इत विलक्षण विग्रह का **"केकीकण्ठाभनीलम्"** इस तरह मयूर नीलिमा से उपमित किया है। जो भगवान् हेय प्रत्यनीक अनन्तकल्याण गुणों का आकार हैं। तथा कृपा का समुद्र हैं इसलिए मुनिलोग इनको दयासागर कहते हैं। भक्त प्रपन्न व्यक्तियों का हृदय कमल ही जिनका आसन है। अर्थात् जो भक्त के हृदय में सदा निवास करते हैं। क्योंकि **"मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि"** ऐसा कथन है। यद्यपि भगवान् जो कि ज्ञानानन्द अमल स्वरूपक हैं। वे तो सर्वव्यापक होने से सर्वत्र सर्वदा विराजमान हैं। उनके लिए स्थान विशेष का कथन अयुक्त प्राय मालूम पडता है। तथापि **"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति"** इत्यादि शास्त्र से उपासना के लिए स्थान विशेष का कथन यत्र तत्र किया गया है वह सर्वथा युक्त ही है। और जिनका मुखकमल विलक्षण शोभा से सर्वदा युक्त रहता है। तथा जो परमात्मा स्वरूप हैं। और शरणागत व्यक्तियों के रक्षण करने के लिए सर्वदा प्रयत्नशील रहते हैं। वे एक दो व्यक्तियों का ही रक्षण करते हैं ऐसा नहीं किन्तु जगत् मात्र का-सम्पूर्ण जगत् का रक्षक हैं नरोत्तम हैं। दशरथ राजा के पुत्ररूप से अवतार लिया है। जो स्वयं महोत्सव रूप हैं। तथा परम दयालु एवं श्रीसीताजी से सदा युक्त हैं। एतादृश श्रीरामजी का मैं सदा स्मरण करता हूँ। हे प्रियोत्तम सुरसुरानन्द ? सर्वशक्तिमान् द्विभुज श्रीरामजी का शुभेच्छु श्रीरामभक्त पुरुष सदा ध्यान करें। तुम भी उन्हीं का ध्यान करो ॥२/३/४/५/६॥

卐 श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे तृतीयपरिच्छेदः 卐

☬ अथ मुक्तिसाधननिरूपणम् ☬

एवं तेऽभिहितं ध्यानं श्रृणु तन्मुक्तिसाधनम् ।
मुमुक्षूणां परं वेद्यं विधेयं चाथ सर्वदा ॥१॥

श्रीआचार्यजी महाराज ध्यान क्या है ? इस तृतीय प्रश्न का समाधान करके **"किं मुक्तिसाधनम्"** इत्याकारक चतुर्थ प्रश्न का उत्तर देने के लिए उपक्रम करते हैं **"एवं तेऽभिहितं ध्यान"** मित्यादि। हे सुरसुरानन्द ? पूर्व कथित प्रकार से ध्यान के स्वरूप का प्रतिपादन किया। इसके वाद जो चतुर्थ प्रश्न हैं उसका उत्तर सुनो। संसार सागर को पार करने की इच्छावाले पुरुषों से जानने के योग्य उस मुक्ति साधन को सुनो तथा उसका आचरण करो ॥१॥

तप्तेन मूले भुजयोः समङ्कनं शरेण चापेन तथोर्ध्वपुण्ड्रकम् ।
श्रुतिश्रुतं नाम च मन्त्रमालिके संस्कारभेदाः परमार्थहेतवः ॥२॥

मोक्षाभिलाषी व्यक्तियों के परम कर्तव्य मोक्ष के कारण को बतलाते हैं "**तप्तेन**" इत्यादि । अग्नि तापित बाण तथा धनुष से दोनों भुजा के मूल में अङ्कन करना १-श्वेत श्रीरामरज मृत्तिका से मस्तकादिक में उर्ध्वपुण्ड्र करना २-श्रीरामदासादिक नाम ३-षडक्षरमन्त्र ४-तुलसीमाला ५-ये पाँच संस्कार ही मोक्ष का साधन है। यह मुक्ति चाहनेवालों के लिए परम कर्तव्य हैं ॥२॥

यतेन्द्रियः शुचिः शुद्धवेशधृक् सुकुलोद्भवः ।
सदाचारपरोनम्रः शास्त्रज्ञो देशना पटुः ॥३॥

शास्त्र कथित पञ्चसंस्कार मोक्ष का साधन है ऐसा पूर्व दो श्लोक द्वारा बताया है। और यह संस्कार गुरु साध्य है तो कैसा गुरु हो ? उसका लक्षण क्या है ? इत्यादि बात को समझाने के लिए कहते हैं, "**यतेन्द्रिय**" इत्यादि । जो बाह्य तथा अन्तर इन्द्रिय पर जय को प्राप्त किया हो, शरीरादि से पवित्र हो, शुद्ध सादा वेश को अर्थात् साधु के उचित वेश का धारण करता हो, ब्राह्मणादिक विशिष्ट कुल में समुत्पन्न हो, साधुओं के आचार विचार में तत्पर हो, विनम्र हो, न तु उद्धत हो, साङ्गवेदादि शास्त्र का ज्ञानवान् हो, और देशना-उपदेश देने में चतुर हो, अर्थात् व्याख्याता हो-एतादृश जो व्यक्ति हो उसे गुरु बनाना चाहिए ॥३॥

विरक्तधर्मनिरतो ध्यानाभ्यासी सुबुद्धिमान् ।
निग्रहेऽनुग्रहेचैव समर्थो देशिको मतः ॥४॥

जो व्यक्ति विरक्त धर्म में अर्थात् श्रीवैष्णवीय समस्त पूर्वाचार्य प्रवर्तित श्रीवैष्णवमत का पालन करने में सर्वदा संलग्न हो और ध्यानाभ्यासी हो न तु विरक्तवेश विरोधि कार्य में निरत हो वेदाभ्यास करनेवाला हो बुद्धिमान देशकाल को समझकर कार्य करनेवाला हो, और निग्रह अनुग्रह करने में सामर्थ्य वाला हो एतादृश व्यक्ति को ही आचार्य बनावें ॥४॥

हीनाङ्गो ह्यधिकाङ्गश्च कपटीकृष्णदन्तवान् ।
नेत्ररोगीचकुष्ठी च वावदूकश्च वामनः ॥५॥

व्यसनी बहुनिद्रश्च कुनखी बहुभोजनः ।

नेदृशोदेशिको योग्यो मुमुक्षोर्मोक्षसाधने ॥६॥

जो अंग विकल हो तथा अधिक अङ्ग वाला हो, कपट माया करने वाला मायावी हो, जिसका दाँत काला हो, नेत्र रोग से दूषित अर्थात् अक्ष्णाकाण अन्ध हो, द्वाविंशति भेदविन्न कुष्ट रोगादि संक्रामक रोगवाला हो, तथा निरर्थक अधिक वोलनेवाला वावदूक हो, वामन कद से छोटा हो, गांजा बीडी वगैरह व्यसनवान् हो प्रमाण में अधिक निद्राशील हो जिसका नख सडा हुआ हो और अधिक भोजन करनेवाला हो क्योंकि **"अस्वर्ग्यलोकविद्विष्टम्"** इत्यादि मनु वचन से बहुभोजन का निषेध है। मुमुक्षुओं को मोक्ष साधन का उपदेश देने के लिए एतादृश आचार्य योग्य नहीं है। विशेष विचार अन्यत्र देखिये ॥५-६॥

श्रद्धान्वितो विशुद्धात्मा मेधावीविनयीपटुः ।

कुलीनः सच्चरित्रश्च बुद्धिमान् व्रततत्परः ॥७॥

जो श्रद्धा से युक्त हो अर्थात् गुरु वाक्य पर विश्वास वाला हो, पवित्र अन्तःकरणवाला हो, प्रज्ञावान् बिनयशील चतुर हो, सत्कुल में समुत्पन्न हो, जिसका चरित्र अच्छा हो, बुद्धिमान् तथा लोक व्यवहार चतुर हो, एतादृश व्यक्ति शिष्य बनने का योग्य होता है ॥७॥

गुरुशुश्रूषणे शक्त आज्ञाकारी जितेन्द्रियः ।

अनुल्वणो भक्तिनिष्ठः शिष्यः कार्यस्तु दैशिकैः ॥८॥

निम्न लिखित गुणों से युक्त पुरुष को ही आचार्य शिष्य बनावें न तु जिस किसी को शिष्य बनाने का लोभ तथा साहस करें। तथाहि जो गुरु शुश्रूषा-गुरु तथा भगवान् की सेवा करने में शक्त समर्थ हो, तथा गुरु की आज्ञाकारी हो, अर्थात् गुरु के आज्ञा से कार्य करनेवाला हो, न तु स्वतन्त्र हो, तथा जितेन्द्रिय हो, अर्थात् जिसको वाह्याभ्यन्तर इन्द्रिय के ऊपर विजय प्रास हो, अनुल्वण क्रोधादिक मानस विकार से अविकृत हो, अन्यथा क्रोधादिवश कदाचित् गुरु को भी अपमानित कर बैठे। तदुक्तं **"क्रुद्धः पापं न कुर्यात्कः क्रुद्धो हन्याद् गुरूनपि । क्रुद्धः परुषया वाचा नरः साधुनधिक्षिपेत्"** । तथा भक्ति निष्ठ हो अर्थात् गुरु और परमेश्वर की सेवा करने में

प्रयत्नशील रहता हो, एतादृश व्यक्ति को आचार्य शिष्य बनावें ॥८॥

परीक्ष्यशिष्यं समुपासकं गुरुर्वर्षंसमभ्यर्च्य च वह्निदेवताम् ।
चापादिभिर्हेतिवरैः सुतापितैर्दिने सुपुण्ये नियतः समङ्कयेत् ॥९॥

यथोक्त क्रम से मोक्ष साधन पञ्चसंस्कार के स्वरूप तथा गुरु शिष्यादि स्वरूपों का निर्वचन करके अनन्तर बाण-धनुष के धारण करने के विधि को बतलाते हुए कहते हैं **"परीक्ष्यशिष्यं समुपासकम्"** इत्यादि । अज्ञान रूप अन्धकार को विनाश करनेवाले गुरु महाराज एक वर्ष तक उपासना करनेवाले शिष्य की समीचीन रूपसे परीक्षा करके अग्नि देवता का समीचीन पूर्वक कुशकण्डिकादि द्वारा पूजन करके सर्व आयुधों में श्रेष्ठ भगवान् श्रीरामजी का धनुषबाण रूप जो आयुध प्रतिकृति हैं उन आयुधों को सुसंस्कृत अग्नि में तपावें, तदनन्तर सुतप्त उन धनुषबाण से श्रीरामनवमी प्रभृतिक पुण्य तिथियों में शिष्य के दोनों भुजा के मूल में सावधान होकर अंकित करदिया जाय इसका विशेष विवरण श्रीवैष्णवसंन्यासमीमांसा में किया हूँ वहीं देखें ॥९॥

सहोर्ध्वपुण्ड्रं सुमृदाश्रिया तथा, रामादादिदास्यान्वितनामकुर्यात् ।
मन्त्रं तथैवोपदिशेद्विधानतो मालाञ्चदद्यात् तुलसीसमुद्भवाम् ॥१०॥

हे सुरसुरानन्द ? अङ्कनानन्तर आचार्य शास्त्र विधि के अनुसार शिष्य को मस्तकादि प्रदेश में सफेद मृत्तिका-श्रीरामरज से श्री सहित ऊर्ध्वपुण्ड्र करदे तथा शास्त्रानुसार रामदास, हनुमानदास प्रभृतिक नामकरण करें । एवं विधान पूर्वक तुलसी कण्ठी प्रदान कर षडक्षर मन्त्रराज का उपदेश करें, अनन्तर तुलसीकाष्ठ निर्मित अष्टोत्तरशत प्रमाणक माला भी शिष्य को देवें ॥१०॥

एवं महान् भागवतः सुसंस्कृतो रामस्य भक्तिं परमां प्रकुर्यात् ।
महेन्द्रनीलाश्मरुचेः कृपानिधेः श्रीजानकीवल्लभरावणारेः ॥११॥

हे सुरसुरानन्द ? पूर्व कथित पञ्चसंस्कार से सुसंस्कृत अधिकारी शिष्य महाभागवत होकर के श्रेष्ठ नीलमणि की तरह श्यामल दया समुद्र श्रीविदेहजा श्रीसीताजी के वल्लभ-अति प्रिय रावण के अरि-शत्रु भगवान् श्रीरामजी की पराभक्ति तैलधारा की तरह स्मृति प्रवाह रूप परम भक्ति करें । अर्थात् भगवान् की सेवा में संलग्न हो जाय ॥११॥

उपाधिनिर्मुक्तमनेकभेदकाभक्तिः समुक्तापरमात्मसेवनम् ।
अनन्यभावेन मुहुर्मुहुः सदा महर्षिभिस्तैः खलु तत्परत्वतः ॥१२॥

हे सुरसुरानन्द ? अनन्यभाव से सर्वदेश सर्वकाल में निश्चय पूर्वक तत्पर भगवत् परक रहनेवाले श्रीवाल्मीकि श्रीपराशरादिक महर्षियों ने उपाधिभेद विनिर्मुक्त अर्थात् ममता, काम, क्रोध और अहङ्कारादि से सर्वथा रहित परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी की सेवा रूप जो भक्ति है तादृश भक्ति का अनेक प्रकार बतलाया है। अर्थात् श्रवण स्मरणादि आत्म समर्पणान्त अनेक भेद को बतलाया है । वह सव भजन रूप ही है अतः सर्वतोभाव से श्रीराम सेवारत हो जावो ॥१२॥

सा तैलधारा समनित्यसम्स्मृतेः सन्तानरूपेशिपरानुरक्तिः
भक्तिः विवेकादिकसप्तजन्या तथा यमाद्यष्टसुबोधकाङ्गा ॥१३॥

"**रामस्यभक्तिं परमां प्रकुर्यात्**" एतादृश वाक्य से कथित कायिक वाचिक तथा मानसिक रूप जो सर्वेश्वर श्रीरामजी की पराभक्ति है उसका स्वरूप क्या है ? तथा तादृश पराभक्ति का साधन क्या है ? इस वात को बतलाने के लिए आचार्यजी कहते हैं "**सा तैलधारेत्यादि**" जो विवेक प्रभृति अर्थात् विवेक, विमोक, अभ्यास, क्रिया, कल्याण, अनवसाद तथा अनुद्धर्ष-इन सात प्रकारक बोधायनवृत्ति प्रतिपादित कारणों से उत्पन्न है तथा जिसके यम प्रभृतिक अर्थात् यम, नियम, आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि-ये आठ प्रकार के कारण समुचित रूपसे बोध कराने में कारणात्मक अंग हैं । तैलधारा के सदृश नित्य संस्मृति अर्थात् अविच्छिन्न स्मरण प्रत्यक्षाकार ज्ञान से जायमान जो भगवान् श्रीरामजी में परम अनुराग है उसी को अनन्या भक्ति कहते हैं । इस अनन्या भक्ति से ही सायुज्य मोक्ष होता है । "**भक्त्यात्वनन्ययालभ्योऽहमेवं विधोऽर्जुन**" "**अनन्याश्चिन्तयन्तोमाम्**" इत्यादि वचन प्रमाण से ॥१३॥

उदारकीर्तेः श्रलणं च कीर्तनं हरेर्मुदासंस्मरणं पदश्रितिः ।
समर्चनंवन्दनदास्यसख्यान्यात्मार्पणं सा नवधेति गीयते ॥१४॥

भगवान् श्रीरामजी की जो उदार कीर्ति है उसका श्रीरामायणादि द्वारा श्रवण करने को श्रवण भक्ति कहते हैं। उदार कीर्ति का यह अर्थ है कि सकल साधारण के ऊपर सव प्रकारक सहृदयता रखना तथा धर्मादि मोक्षान्त पद देने का सुयश को

उदार कीर्ति कहते हैं । तथा भगवान् के गुण, कथन, भगवान् के गुणों का अनवरत स्मरण करना षोडशोपचारादि विधि से भगवान् का पूजन करना, तथा वन्दन करना अर्थात् दण्डवत् प्रणाम करना, भगवान् के प्रति अपने को दास किंकर समझना । सखाभाव का ग्रहण आत्म समर्पण करना-ये नौ भक्ति के स्वरूप हैं तदुक्तम्-

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनमिति ॥१४॥

॥ अथैकादशी निर्णयः ॥

एकादशीत्यादिमहाव्रतानि वै कुर्याद्विवेधानि हरिप्रियाण्यथ ।
विद्धादशम्यायदिसाऽरुणोदये सद्वादशींतूपवसेद्विहायताम् ॥१५॥

मुक्ति के परम साधन भक्ति का भेद सहित निरूपण करके तदनन्तर भक्ति का उपोद्बलक एकादशी प्रभृतिक व्रतों का निर्णय करने के लिए कहते हैं उसमें भी सर्व प्रतिष्ठित एकादशी व्रत के विषय में एकादशी का निर्णय करने के लिए कहते हैं **"एकादशीत्यादि महाव्रतानि"** इत्यादि । भगवान् की प्रसन्नता के लिए उपासक वैष्णव भगवान् श्रीरामजी के संतोषप्रद एकादशी महाव्रत का अनुष्ठान करें । यदि कदाचित् एकादशी, एकादशी के सूर्योदय से पूर्व अरुणोदय काल में स्व पूर्ववर्ती दशमी तिथि से स्पृष्ट-अर्थात् विद्धा हो तो, दशमी विद्ध उस एकादशी को छोडकर के द्वादशी को ही उपवास करें । अर्थात् विद्धा एकादशी का उपवास न करके तदव्यवहितोत्तर कालिक द्वितीय सूर्योदय कालिक शुद्ध द्वादशी में ही उपवास करें । उपवास का अर्थ है-अहोरात्रावच्छेदेन चतुर्विध भोजन निवृत्ति आधुनिक धर्मशास्त्रानभिज्ञ भात रोटी न खा करके तदितर फलादिक का यथेच्छ सेवन करके अपने को व्रती समझते हैं । इसका विशेष विवरण इसी प्रकरण में आचार्यजी स्वयमेव करेंगे । तथा स्थलान्तर से भी देखें ॥१५॥

शुद्धादशम्यासुयुतेतिभेदभागेकादशी सा द्विविधा प्रबुध्यताम् ।
वेधोऽपि बोध्यो द्विविधोऽरुणोदये सूर्योदये वा दशमीप्रवेशतः ॥१६॥

कर्तव्य अनुष्ठेय जो एकादशी तिथि है वह शुद्धा तथा दशमी विद्धा इसप्रकार दो प्रकार की है । अर्थात् एकादशी दो प्रकार की है शुद्धा तथा दशमी विद्धा ।

अरुणोदय तथा सूर्योदय इन दो कालों में दशमी का प्रवेश होने से वेध भी दो प्रकार का होता है। ऐसा पण्डितों को जानना चाहिए ॥१६॥

स पञ्चपञ्चप्रमितो ह्युषो बुधैः कालस्तुषट्पञ्चमितोऽरुणोदयः।
प्रातस्तु सप्तेषु मितो निगद्यते सूर्योदयस्स्यात्तु ततः परं तथा ॥१७॥

वेध रहित उपोषणीय एकादशी के स्वरूप को जानने के लिए उषः काल अरुणोदय काल, प्रातः काल और सूर्योदयादि काल के स्वरूप को जानने के लिए आचांर्यजी कहते हैं **"स पञ्च पञ्चप्रमितः"** इत्यादि। हे सुरसुरानन्द ? ज्योतिः शास्त्र के ज्ञाता विद्वान् लोग कहते हैं कि दिन तथा रात्रि के जो ६० दण्ड प्रमाण काल है उसमें से ५५ दण्ड बीत जाने पर जो छप्पनवाँ दण्डात्मक काल है तादृश काल को उषाकाल कहते हैं। तथा अहोरात्र के छप्पनवाँ दण्ड के बीत जाने पर जो बाकी चार दण्डात्मक काल अवशिष्ट रह जाता है उसको अरुणोदयात्मक काल कहते हैं। और दिनमान के ५७ दण्डात्मक काल के बीत जाने पर अवशिष्ट तीन दण्डात्मक काल को प्रातःकाल प्रत्यूष काल कहते हैं। और इसके वाद का अर्धसूर्य के उदय होने के अनन्तर सम्पूर्ण समय को सूर्योदय काल है ऐसा प्राचीन मुनि लोग फरमाते हैं। ऐसा ज्योतिष शास्त्रों में कहा है-**"पञ्चपञ्च उषः कालः षट्पञ्च अरुणोदयः। सप्तपञ्चभवेत्प्रातः शेषः सूर्योदयः स्मृतः"** पचपन दण्ड का काल उषःकाल कहलाता है। अर्थात् दिनमान के पचपन दण्ड के वाद के काल को उषःकाल कहते हैं। तथा दिनमान के छप्पन दण्डात्मक काल को अरुणोदय काल कहते हैं। तथा सत्तावन दण्डात्मक काल को प्रातः काल कहा जाता है। और इसके वाद के काल को सूर्योदय काल कहते हैं ॥१७॥

घटीचतुष्कं ह्यरुणोदयाभिधः प्रार्तर्विमृष्टः समयो महर्षिभिः।
तथाऽत्रवेध प्रभृतेर्विपश्चितः प्राहुर्विभागान् चतुरोविवेकतः।१८।

काल ज्ञानी लोगों ने प्रभात कालिक चार दण्ड का समय जो कि अरुणोदय कालरूप से निश्चित किया है। महात्मा विद्वानों ने भी चारों तरह के वेध का जो विचार किया है वह उसी काल का कथन किया है। अर्थात् उसी आधार पर कालनिरूपण किया है ॥१८॥

घटीत्रयं सादूर्धमथारुणोदये वेधोऽतिवेधः कथितोघटीद्वयम् ।
रविप्रभासस्य तथोदितेऽर्धके सूर्ये महावेध इतीर्यते बुधैः ॥१९॥

कालवेत्ता विद्वान् लोग सूर्यप्रभा के दर्शन के पूर्व काल में जो साढेतीन दण्डात्मक काल है उसमें जो वेध है उसे अरुणोदय वेध कहते हैं । तथा रविप्रभा दर्शन के दो दण्ड पूर्व के समय में जो वेध होता है उसको अतिवेध कहते हैं । और सूर्यप्रभा दर्शन से अर्धसूर्य उदित होने तक का जो अद्र्ध दण्डात्मक समय है उसमें जो वेध होता है उस वेध को महावेध कहते हैं । इसप्रकार अरुणोदय कालिक वेध अतिवेध और महावेध का निरूपण हुआ ॥१९॥

योगस्तुरीयस्तुदिवाकरोदये तेऽर्वाक् सुदोषातिशयार्थबोधकाः ।
सर्वेऽपि वेधा मुनिभिर्विनिश्चितानिर्णेतृभिस्तस्य तु तत्वदर्शिभिः ॥२०॥

दिवाकर सूर्य के उदय होने के अनन्तर सम्पूर्ण दिन तथा रात्रि के अन्तर्गत जो दशमी का वेध होता है तो उस वेध को "योग वेध" कहते हैं । तत्व को जाननेवाले जो लोग हैं उन्होंने उपर्युक्त सर्ववेध का अर्थात् चारों प्रकार के वेध का भिन्न विभाग, एक दूसरे में महान् दोषों की अपेक्षाकृत अधिक बोध कराने के लिए ही विशेष रूपसे निश्चित किया है । यद्यपि इसप्रकार के कालवेध का निर्णय करना इस श्रीवैष्णवमत में कोई खास उपयोगी नहीं है । तथापि मतान्तरों में तो उपयोगी है ही ॥२०॥

पूर्णेति सूर्योदयकालतः सा या प्राङ्मुहुर्तद्वयसंयुता च ।
अन्या तु विद्धा परिकीर्तिता बुधैरेकादशी सा त्रिविधापि शुद्धा ॥२१॥

सूर्योदय काल से पूर्व दो मुहुर्त अर्थात् चार दण्ड से युक्त जो एकादशी है, वह पूर्णा अर्थात् सम्पूर्ण एकादशी शुद्धा है उपोष्या है ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं । इससे भिन्न जो एकादशी है वह दशमी विद्धा कही गई है वह उपवास योग्य नहीं है। जो एकादशी शुद्ध है अर्थात् वेध रहित है वह वक्ष्यमाण प्रकार से तीन प्रकार की है ऐसा विद्वानों ने कहा है ॥२१॥

एका तु द्वादशीमात्राधिका ज्ञेयोभयात्मिका ।
द्वितीया च तृतीया तु तथैवानुभयात्मिका ॥२२॥

तत्राद्या तु परैवास्ति ग्राह्या विष्णुपरायणैः ।
शुद्धाप्येकादशी हेया परतो द्वादशी यदि ॥२३॥
उपोष्यद्वादशीं शुद्धां तस्यामेव च पारणम् ।
उभयोरधिकत्वेतु परोपोष्या विचक्षणैः ॥२४॥

प्रथम एकादशी तो वह है जिसमें द्वादशी तिथि की मात्रा अधिक हो । दूसरी एकादशी वह है जिसमें एकादशी तथा द्वादशी दोनों की मात्रा अदिक हो तीसरी एकादशी वह है जिसमें दोनों की एकादशी एवं द्वादशी की मात्रा कम हो । इन तीनों में, पहली एकादशी में पर तिथि का द्वादशी का ही व्रतोपवास वैष्णवों को करने योग्य है । क्योंकि यदि द्वादशी अपने आगामी तिथि तक चली जाय तो इस अवस्था में शुद्धा एकादशी भी त्याज्य ही है । तब द्वादशी को उपवास करके द्वितीय द्वादशी में पारण करे । बुद्धिमान व्यक्ति उभय की अधिकता होने पर द्वितीय एकादशी का ही उपोषण करते हैं । इस विषय पर अधिक विचार अन्यत्र करेंगे ॥२२/२३/२४॥

उन्मिलिनी वञ्जुलिनी सुपुण्याः सा त्रिस्पृशाथोलुपक्षवर्द्धनी ।
जया तथाष्टौ विजया जयन्ती द्वादश्य एता इति पापनाशनी ॥२५॥

एकादशी का निर्णय करके एकादशी सहचरित द्वादशी का जो कि परमोपयोगी है तादृश द्वादशी का स्वरूपादि को बतलाने के लिए कहते हैं उन्मिलिनी इत्यादि । उन्मिलिनी वंचुलिनी त्रिस्पृशा, पक्षवर्द्धिनी, जया, विजया, जयन्ती, पापनाशिनी इसप्रकार के आठ द्वादशी हैं । जो कि उत्तम पुण्य फल को देनेवाली है । इनका प्रत्येक का लक्षण तथा स्वरूपादिक को पद्मपुराणादि में देखें । यहां संक्षेप किया गया है ।२५।

आषाढभाद्रोर्जसितेषु संगता मैत्रश्रवोऽन्त्यादिगतद्व्युपान्त्यकैः ।
चेद्द्वादशी तत्र न पारणं बुधः पादैः प्रकुर्याद् व्रतवृन्दहारिणी ॥२६॥

एकादशी व्रत पारणा में उपयोगी द्वादशी तिथि का निर्णय करके एकादशी व्रत पारणा में निषिद्ध जो द्वादशी तिथि है उसका निर्णय करने के लिए कहते हैं "आषाढ भाद्र" इत्यादि । आषाढ मास भाद्रपद मास और उर्जस-कार्तिकमास-इन महिनों का जो शुक्लपक्ष है, उसकी जो द्वादशी तिथि है अर्थात् आषाढ, भादो तथा कार्तिक मास की जो शुक्ला द्वादशी तिथि है ये यदि अनुराधा, श्रवणा और रेवती नक्षत्र के यथाक्रम इन नक्षत्रों

के प्रथम द्वितीय तृतीय चरणों से युक्त विद्ध हो तव धर्मशास्त्र वेत्ता विद्वान् एकादशी व्रत का पारणा, इन द्वादशी तिथि में न करें। क्योंकि एतादृश द्वादशी तिथि एकादशी व्रत समुदाय के पुण्यों को विनाश करनेवाली है। तदुक्तम्, "आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती। संगमे नैवभोक्तव्यं द्वादशी द्वादशं हरेदितिनिषिद्ध द्वादशी विचारः" ॥२६॥

अथ श्रीरामनवमीव्रतनिर्णयः

मासे मधौ या नवमीसुयुक्ता शुक्लाऽदितीशेन शुभेन भेन।
कर्केमहापुण्यतमासुलग्ने जातोऽत्र रामः स्वयमेव विष्णुः ॥२७॥

चैत्रमासीय शुक्लपक्ष की पुनर्वसु नक्षत्र सहित तथा अतिशयित पुण्यजनक कर्कलग्न से युक्त नवमी नामक तिथि के मध्याह्नकाल में कौशल्याजी से सकल लोक नायक त्रिपाद विभूति नियामक परब्रह्म रूप भगवान् श्रीरामजी अवतरित हुये ॥२७॥

तामष्टमीवेधयुतां विहाय व्रतोत्सवं तत्र करोतु भक्तः।
असङ्ख्यसूर्यग्रहतोऽधिका वै, या केवला, सा, नवमीप्युपोष्या ॥२८॥

श्रीवैष्णवगण अष्टमीवेध रहित नक्षत्र युक्त यथोक्त नवमी में व्रत उपोषण तथा भजन कीर्तन सपरिवार श्रीरामजी का पूजन अर्चन करें। यदि नवमी पुनर्वसु नक्षत्रादि रहित हो तथापि तादृश नवमी भी असंख्य सूर्य ग्रहण से अधिक महत्व वाली है अतः श्रीवैष्णवगण तादृश नवमी का भी आराधना करें। अर्थात् तादृश नवमी में भी व्रतोपवास पूजनादि करें ॥२८॥

अत्र प्रकुर्वीतमुदाव्रतोत्सवं रामार्चनं जागरणं महाफलम्।
अनेकजन्मार्जितपापनाशनं श्रीरामकीर्तेः श्रवणं च कीर्तनम् ॥२९॥

पूर्वोक्त सम्पूर्ण योग युक्त श्रीरामनवमी तिथि के दिन महाफल प्रदान करनेवाला श्रीरामचन्द्रजी का व्रत तन्निमित्त उत्सव श्रीरामचन्द्रजी की पूजा रात्रि जागरण अनेक जन्म से अर्जित पाप समूहों को नाश करनेवाली श्रीरामचन्द्रजी की कीर्ति अर्थात् कथा का श्रवण तथा कीर्तन श्रीवैष्णवश्रेष्ठों को अवश्य करना चाहिए ॥२९॥

अथ श्रीजानकीनवमीनिर्णयः

पुष्यान्वितायां तु कुजे नवम्यां श्रीमाधवे मासि सिते हलेन।
कृष्टाक्षितिः श्रीजनकेन तस्यां सीताविरासीद्व्रतमकुर्यात् ॥३०॥

माधव वैशाख मास शुक्लपक्ष मङ्गल दिवस पुष्य नक्षत्र युक्त नवमी तिथि में राजा जनकजी ने पृथिवी को पूजन कर हल से जोता। उस हल के जोतने से पृथिवी से श्रीसीताजी का प्रादुर्भाव हुआ। इसलिए इस पुण्यतिथि नवमी के दिन श्रीसीताजी का व्रत पूजनोत्सवादिक भक्त लोग करें। यह तिथि पूर्व तिथि के वेधरहित हो तथा मध्याह्न व्यापिनी हो उसमें व्रतोत्सवादिक किया जाय। यदि दोनों दिन में मध्याह्न व्यापिता हो तव पर दिन में ही व्रतादिक करना चाहिए। पूर्व दिन में व्रतादिक न किया जाय ॥३०॥

अथ श्रीहनुमज्जयन्तीव्रतनिर्णयः

स्वात्यांकुजेशैवतिथौ तु कार्तिके कृष्णेऽञ्जनागर्भत एव मेषके।
श्रीमान् कपीट् प्रादुरभूत् परंतपो व्रतादिना तत्र तदुत्सवंचरेत् ॥३१॥

कार्तिक मास कृष्णपक्ष चतुर्दशी तिथि मंगलवार तथा मेषलग्न के उदय अर्थात् सायंकाल में शत्रु संतापक श्रीमान् कपीश्वर हनुमानजी अञ्जना के गर्भ से आविर्भूत हुये। इस शुभ तिथि में भक्त लोग श्रीहनुमानजी का व्रत पूजनादि करें। यह चतुर्दशी सायाह्न व्यापिनी आराधनीय है। उस दिन में सायाह्न व्याप्ति न हो तो परा का ही ग्रहण करना चाहिए ॥३१॥

अथ श्रीनृसिंहजयन्तीव्रतनिर्णयः

वैशाखमासीयचतुर्दशीसिता निशामुखेयाऽनिलभेन संयुता।
सोमेऽवतारोनृहरेरभूदथो व्रतोत्सवं तत्र मुदासमाचरेत् ॥३२॥

वैशाखमास शुक्लपक्ष स्वाती नक्षत्र युक्त चतुर्दशी तिथि सोम के दिन सूर्य के अस्तमयकाल अर्थात् सायंकाल में ''सर्वेषामवताराणामवतारी रघूत्तमः'' इस आगम वचन प्रमाणानुसार सर्वेश्वर श्रीरामजी का ही भगवान् श्रीनृसिंहजी के रूपमें अवतार हुआ। इसलिए यथोक्त तिथि में प्रति वर्ष भक्त लोग श्रीनृसिंह भगवान् का व्रत पूजन उत्सवादिक करें ॥३२॥

स्मरेण विद्धा तु चतुर्दशी यदा भवेद्धनापत्यविनाशिनी तदा।
तत्रोपवासो न जनै र्विधीयतां महात्मभिर्विष्णुपरायणैरपि ॥३३॥

जव चतुर्दशी काम तिथि त्रयोदशी से अरुणोदय काल में विद्धा संयुक्त हो तो वह धन एवं पुत्र का विनाश करनेवाली होती है। अतः उसमें व्रत पूजनादिक कार्य

को विष्णु भक्त परायण महात्मा लोगों को नहीं करना चाहिए ॥३३॥

अथ श्रीकृष्णाष्टमीव्रतनिर्णयः

भाद्रेऽसितेनिशीथेऽथ रोहिण्यामष्टमीतिथौ ।
सिंहमर्केंगतेसौम्ये कृष्णोजातोविधूयते ॥३४॥
कृष्णजन्माष्टमीसोक्ता तस्यां कृष्णव्रतोत्सवम् ।
कुर्वीत विधिसंयुक्तं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥३५॥

नृसिंह चतुर्दशी का विवेचन करके कृष्णाष्टमी व्रत का विवेचन करते हैं "**भाद्रेऽसिते**" इत्यादि श्लोकद्वय से । भाद्रपद मास की कृष्णपक्ष मध्यरात्री में रोहिणी नक्षत्र युक्त अष्टमी तिथि में सिंहराशी स्थित सूर्य के विद्यमानता में जव चन्द्रोदय हो गया था तव मथुरा में श्रीवासुदेव के गृह में देवकीजी से "**अजायमानो बहुधाभिजायते**" "**परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते**" इत्यादि श्रुतिवचनानुसार सर्वावतारी परेश श्रीरामचन्द्रजी ही भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूप में लोगों का उपकार करने के लिए जन्म ग्रहण किये अर्थात् यथोक्त काल में देवकी से प्रादुर्भूत हुए ।

यथोक्त अष्टणी का नाम कृष्ण जन्माष्टमी कहा गया है । इस कृष्णाष्टमी तिथि में भगवान् श्रीकृष्ण का व्रत उपवास तथा अर्चन पूजनादिक विधि पूर्वक करना चाहिए । क्योंकि यथोक्त समय में भगवान् का यह व्रतादिक धर्मार्थ चतुर्वर्ग फल को देनेवाला है ॥३४/३५॥

त्याजाष्टमीचेदथवाजिविद्धा तथाग्निविद्धं विधिभं च हेयम् ।
चेदष्टमीनो विधिभेन युक्ता महात्मभिर्विष्णुपरायणैस्तैः ॥३६॥

यदि कृष्णाष्टमी सप्तमी से तथा रोहिणी कृतिका वेध युक्त हो तव विष्णु भक्त महात्मा लोग तादृशाष्टमी तथा तादृशी रोहिणी नक्षत्र का व्रतोत्सव में त्याग करदें और यदि वेध रहित अष्टमी तथा वेध रहित रोहिणी हो तव उसका त्याग न करें किन्तु उसमें व्रतोत्सवादिक करें अर्थात् यह व्रत योग्य है ॥३६॥

विद्धाजयन्ती यदि सप्तमीयुता शुद्धा तथा सा नवमीयुता यदि ।
विद्धाऽथ वेद्याग्नि युता हि रोहिणी ज्ञेया तु शुद्धा यदि सा परान्विता ३७

कौन जयन्ती शुद्ध है तथा कौन अशुद्ध है ? इसका निर्णय करने के लिए

कहते हैं-"विद्धाजयन्ती यदि सप्तमी युता इत्यादि ।" यदि अष्टमी तिथि सप्तमी से युक्त हो तथा रोहिणी नक्षत्र कृत्तिका नक्षत्र से युक्त हो तो तादृश जयन्ती को विद्धा जयन्ती समझना और यदि भाद्रमासीय कृष्णपक्षीय अष्टमी तिथि नवमी से युक्त हो तथा रोहिणी नक्षत्र मृगशिरा नक्षत्र से युक्त हो तो शुद्धा कृष्ण जयन्ती समझना चाहिए। तदुक्तं, "जयन्ती द्विविधा ज्ञेया विद्धाविद्धाविधानतः । विद्धातु सप्तमी युक्ता शुद्धातु नवमीयुता ॥ रोहिणी कृत्तिकायुक्ता विद्धाशुद्धापरान्वितेति ।" इत्यादि वचनों से विद्धा तथा शुद्धा भेद को जानकर शुद्ध जयन्ती में भक्त लोगों को व्रतोपवास अर्चन पूजनादि करना चाहिए ॥३७॥

☬ अथ वामनद्वादशीव्रतनिर्णयः ☬

भाद्रेऽथ शुक्लेऽभिजिति प्रभुर्हरिर्या द्वादशी वैष्णवभेन संयुता ।
तत्रादितावाविरभूच्च वामनो व्रतोत्सवं तत्र मुदा समाचरेत् ॥३८॥

भाद्रपद शुक्लपक्ष के द्वादशी तिथि के श्रवण नक्षत्र से युक्त मध्याह्न काल में, "परास्यशक्तिर्विविधैवश्रूयते" इत्यादि अनेक श्रुत्यनुमोदित सर्व समर्थ परम ब्रह्म भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अदितिजी से वामन रूप को धारण करके आविर्भूत हुये, अर्थात् प्रगट हुए। इसलिए भक्त लोगों को चाहिए कि प्रति वर्ष यथोक्त द्वादशी तिथि में सोत्साह आनन्द पूर्वक भगवान् वामनजी का व्रतोपवास अर्चन-पूजन वगैरह यथाविधि करें ॥३८॥

स्पृशत्येकादशी स्पृष्टा द्वादशी श्रवणेन चेत् ।
विष्णुश्रृङ्खलयोगोऽयं भाद्रशुक्ले प्रकीर्तितः ॥३९॥
श्रवणद्वादशी ह्येषा पुनरावृत्तिनाशिनी ।
तस्मादुपवसेदत्र यत्नतो मतिमान्नरः ॥४०॥

भाद्र शुक्लाद्वादशी एकादशी से विद्ध होकर के यदि श्रवण नक्षत्र से युक्त हो तो वह विष्णु श्रृङ्खला योग होता है ऐसा कहते हैं। एतादृश योगवती द्वादशी सर्वपाप को नष्ट कर देती है इसलिए भक्तलोग इसमें व्रतोपवास करें। इसका वर्णन मत्स्यपुराण में भी किया है→"द्वादशीश्रवणस्पृष्टास्पृशेदेकादशीयदि । स एव वैष्णवो योगो विष्णुश्रृङ्खलसंज्ञकः ।" "तस्मिन्नुपोष्य विधिवन्नरः स क्षीणकल्मषः । प्राप्नोत्य नुत्तमां सिद्धिं पुनरावृत्तिदुर्लभाम्" इति। एवं विष्णु धर्म में भी कहा है "एकादशी

द्वादशी च वैष्णव्यमपितत्रचेत् । तद्विष्णुः श्रृङ्खलं नाम विष्णुसायुज्यकृद्भवेत्'' इत्यादि वचनों से सिद्ध होता है कि विष्णु श्रृङ्खल योग अति प्रशस्त है । तथा यह योग कदाचित् होता है । इसलिए इस द्वादशी में व्रतोपवास आवश्यक है ॥३९/४०॥

तथा यथाकालमतन्द्रितैस्तै रथाधिरोपादिकमुत्सवादिकम् ।
सदा विधेयं हरितोषणं परं शुभप्रदं तद् बहुशास्त्रसंमतम् ॥४१॥

जिस तरह एकादशी प्रभृतिक व्रतोत्सवादिक शास्त्र सिद्ध होने से अवश्य कर्तव्य हैं, उसी तरह पुराणादिकों से अनुमोदित श्रीरामरथोत्सव (रथयात्रा) आदि उत्सवान्तर भी कर्तव्य है । इस वात को बतलाने के लिए आचार्यजी उपक्रम करते है ''**तथायथाकालमतन्द्रितैः**'' इत्यादि । तथाहि अनेक पुराणेतिहास रूप शास्त्र सम्मत भगवान् श्रीरामजी के अतिशय प्रीतिजनक तथा धर्मार्थ काममोक्ष फलका दायक रथयात्रा प्रभृतिक उत्सवादिक को भी आषाढ शुक्ल द्वितीया पुष्य नक्षत्र में अथवा पुष्य नक्षत्र रहित केवल द्वितीया में करना चाहिए । जिसतरह एकादशी प्रभृतिक व्रतोत्सव करणीय हैं, उसी तरह यथाकाल में रथयात्रोत्सव एवं श्रावणमास में झुला महोत्सव भी वैष्णवों को करना चाहिए । दोलोत्सवादिकों का यथा शास्त्र सप्रमाण विववरण श्रीरामदोलिकाशयनाष्टक में मेरी टीका में देखें ॥४१॥

♆ कृपादिभेदनिरूपणम् ♆

कर्मप्रवाहेण तु चेतनस्य सं मग्नस्य संसारमहार्णवेचिरम् ।
उपर्य्यहो ? संसरतोऽवशस्य सत्कृपोद्भवत्येव हरेरहेतुका ॥४२॥

मोक्ष साधनों में सर्वश्रेष्ठ भगवान् की निर्हेतुकी सत्कृपा को बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं ''**कर्मप्रवाहेण तु चेतनस्येत्यादि**'' सर्व प्रकारक अनर्थ का कारण इस संसार रूप समुद्र में अनेक भवोपार्जित शुभाशुभ कर्म के प्रवाह द्वारा चिरकाल अनादि काल से निमज्जमान अत एव विवश सर्वथा पराधीन जो जीव समुदाय हैं एतादृश जीवों के ऊपर करुणा सागर भगवान् श्रीरामजी की अहेतुक अकारण स्वाभाविक ही कृपा होती है । अर्थात् जीवों के ऊपर जो भगवान् की उद्धार करने की इच्छा होती है वह स्वाभाविक है कारणाधीन नहीं ॥४२॥

मोक्षे मुमुक्षोर्नहि तारतम्यं फले प्रपन्नस्य तु सत्प्रपत्तेः ।
अस्त्येवतद्रामकृपोपलभ्ये पतिं श्रियोऽनन्तगुणार्णवं तम् ॥४३॥

सांसारिक बन्धन से छूटने की इच्छावाले हेय प्रत्यनीक अनन्त कल्याण गुणों के महासागर भगवान् श्रीरामजी के शरणागत जो भक्त हैं उनको भगवान् श्रीरामजी की कृपा से प्राप्त जो मोक्षरूप फल है उस मोक्षात्मक फल में थोडा भी तारतम्य न्यूनाधिक भाव नहीं है। अर्थात् पारलौकिक फल साधन यागादि से जायमान स्वर्गरूप फल में जिस तरह तारतम्य होता है। उसतरह मोक्षस्वरूप फल में किसी प्रकार का भेद नहीं होता है। भाव यह कि भगवान् के निवास स्थान साकेत प्राप्ति रूप मोक्ष में भेद नहीं है, मोक्ष एक रूप है। इस कथन से मोक्ष में परस्पर तारतम्यवादी सिद्धान्त का निराकरण होता है ॥४३॥

भवन्त्युपायान्तरमेव सर्वे स्वातन्त्र्यतोमुक्तिपदप्रदास्ते ।
सुकर्मसंवेदनभक्तियोगाः प्रपत्तिः निष्ठैः समनुष्ठितास्तु ॥४४॥

भगवत् प्रपत्ति अर्थात् भगवान् की शरणागति में निष्ठा विश्वास रखनेवाले तथा ममता रहित उपासक के द्वारा कृत संपादित कर्मयोग ज्ञानयोग तथा भक्तियोग भी मोक्ष का प्रधानोपाय ही है तथा वे शरणागति से उपायान्तर भी हैं। ये पूर्व प्रदर्शित सभी कारण उपाय अवश्यमेव मोक्षरूप कार्य का साधक उपाय हैं ॥४४॥

विभुत्वतो निर्भरता परैस्तैः श्रीव्याप्तिरार्यैरभिधीयते हि ।
प्रपञ्चनिर्मातृविरिञ्चिहेतुश्रीरामपादाब्जनिविष्टचित्तैः ॥४५॥

मोक्ष के प्रति कर्मयोग ज्ञानयोग और भक्तियोग को स्वातन्त्र्येण उपायान्तर प्रतिपादन करने के वाद सम्पूर्ण जगत् का निर्माण करनेवाले जो ब्रह्माजी उनका भी अर्थात् ब्रह्माजी का भी कारण स्वरूप भगवान् श्रीरामजी के चरणकमल में संलग्न है मन जिनका एतादृश तथा भगवान् के ऊपर पूर्णरूप से भरोसा रखनेवाले एवं श्रेष्ठ विद्वान् मुमुक्षु लोगों ने श्रीसीताजी की व्याप्ति को विभुत्व रूप से ही स्वीकार किया है पर अणुत्व रूपसे नहीं ऐसा इस श्लोक का तत्त्वार्थ है ॥४५॥

नित्यं सा पुरुषाकारभूता सीताऽनपायिनी ।
अनुपायान्तरैर्विज्ञैरुच्यते तदुपायता ॥४६॥

शरणागति से अतिरिक्त उपायों से कर्मज्ञान भक्ति से रहित अर्थात् मात्र शरणागति को कारण माननेवाले पुरुष भगवान् की आज्ञा को शिरोधार्य करके कर्माद्यनुष्ठान में प्रवृत्त नर श्रेष्ठों ने नित्या पुरुषकाररूपा श्रीसीताजी को मोक्षोपाय बतलाया है ॥४६॥

विभोश्चवात्सल्यमहार्णवस्य वै वात्सल्यमिष्टं जनदोषभोगिता ।
समुच्यते तैर्नृभिरस्वतन्त्रकैः सदा सदाचारपरायणैर्वरैः ॥४७॥

सदा सर्वकाल में विरक्तोचित सदाचार से सम्पन्न अपने को भगवान् का पराधीन माननेवाले श्रेष्ठ प्रपन्न शरणागत महापुरुषों ने शरणागत पुरुषों के अनुकूल अर्थात् हितचिन्तक दया महोदधि सर्वव्यापक भगवान् श्रीरामजी की जो वत्सलता है वह प्रपन्न व्यक्तियों का दोष भोगिता स्वरूप ही है ऐसा कहा है। अर्थात् जिस तरह गवादिक पशु स्वकीय नवजात वत्सों के शरीर में रहनेवाला जो मल है उसको स्वकीय जिह्वा के द्वारा चाट करके वत्स को निर्मल बना देती है। यथावा साधारण भी माता स्वकर्तव्य समझकर स्वसन्तान के शरीरादिगत अस्वच्छता सम्पादक दोषों को हटाकर पुत्रादिक को निर्मल स्वच्छ रखती है। उसी तरह वत्सलता का महासमुद्र भगवान् श्रीरामजी भी भक्त के कायिक वाचिक मानसिक प्राकृतिक सकल दोषों का निराकरण करके भक्तों को यथाभिमत सायुज्यादि मोक्ष को देकर के कृतार्थकर देते हैं। यही भगवान् श्रीरामजी में दोष भोगित्व है ॥४७॥

दयान्यदुःखस्य निगद्यते बुधैरप्राकृतैस्तैरसहिष्णुता स्मृता ।
कृपामहाब्धेः समुदारकीर्तेर्विष्णोरचिन्त्याखिलवैभवस्य वै ॥४८॥

अप्राकृतैर्बुधैः अर्थात् प्राकृतिक अहं ममतादिक सांसारिक काम क्रोधादिक अनेक प्रकार विकार समुदाय से रहित भगवान् की शरणागति में निष्ठा रखनेवाले विद्वानों ने चिन्ता से भी परे समस्त ऐश्वर्य तथा प्रचुर उदार कीर्तिवाले कृपा का महासागर सर्वव्यापक तथा समस्त जडचेतनात्मक जगत् का कारण भगवान् श्रीरामचन्द्रजी में जो पर दुःखासहिष्णुत्व है। अर्थात् शरण में आगत प्रपन्न भक्तों का जो दुःख है उसका सहन न करना इसीको भगवान् की दाया है ऐसा कहा है। भगवान् भक्त के दुःख का सहन करते हैं अर्थात् तादृश दुःख से भक्त को झटिति छुटकारा दिला देते हैं ॥४८॥

स्वीयप्रवृत्तेस्तु निवृत्तिरिष्टो न्यासोऽथ वेद्योपि बुधैः सदैव ।
ऐकान्तिकैस्तत्त्वविचारदक्षैः परात्मनिष्ठैः परमास्तिकैस्तैः ॥४९॥

भगवान् के दया के स्वरूप को बतला करके तदनन्तर सम्प्रदाय सिद्ध, "न्यास" का स्वरूप निरूपण करने के लिए उपक्रम करते हैं "**स्वीयप्रवृत्तेस्तु**" इत्यादि। श्रौत

विशिष्टाद्वैत प्रतिपादित तत्त्व का विचार करने में अति प्रवीण अत एव परम आस्तिक अर्थात् गुरु तथा वेदान्त वाक्य में श्रद्धाशील एवं एकान्त स्वस्वरूप में अवस्थित श्रीवैष्णव विद्वान् लोग भगवत्परायण होते हुए स्वकीय भरणपोषणादि व्यापार प्रवृत्ति की निवृत्ति को ही सम्प्रदायाभिमत न्यास शब्द से कथन करते हैं। अर्थात् स्वकीय प्रवृत्ति का जो निरोध है उसी को न्यास पद प्रतिपाद्य मानते हैं। इस विषय की चर्चा विशेष रूपसे श्रीचिदानन्दाचार्यप्रणीत न्यासकलानिधि के विवरण में की जायगी ॥४९॥

सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणः सदा शक्ता अशक्ता पदयोर्जगत्प्रभोः ।
अपेक्ष्यते तत्र कुलं बलं च नो न चापि कालो न च शुद्धतापि वै ॥५०॥

भगवत् प्रपत्ति मोक्ष का कारण है। इस पर जिज्ञासा होती है कि इस प्रपत्ति का अधिकारी कौन है? इसके उत्तर में आचार्य श्री कहते हैं कि हे सुरसुरानन्द? भगवान् की शरणागति में सवको अधिकार है। चाहे वह बलवान् हो, बल हीन हो, उच्चकुलोद्भव हो अथवा नीच हो। क्योंकि भगवान् बहुत कृपालु हैं वे स्वप्रपत्ति में कुल जात्यादिकों की अपेक्षा नहीं रखते हैं। इसलिए जीव मात्र प्रपत्ति का अधिकारी हैं ॥५०॥

धर्मत्यागोऽपि परमैकान्तिकैरुच्यते वरैः ।
इत्थं हि कर्मणां त्यागः स्वरूपस्याखिलस्य च ॥५१॥

पूर्व प्रतिपादित प्रपत्ति शरणागति के द्वारा वैष्णव श्रेष्ठ श्रीवैष्णवगण कर्मों के स्वरूपतः त्याग को अर्थात् कर्तृत्वाभिमान त्याग पूर्वक सर्वफल के त्याग को ही धर्म त्याग कहते हैं ऐसा शास्त्रीय सिद्धान्त है ॥५१॥

अथोपायान्तराण्येव प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विरोधीति प्रपत्तेस्तु सम्बन्धज्ञानकोविदाः ॥५२॥

अथ-अर्थात् धर्मत्याग निश्चय के वाद भगवान् के साथ सकल चेतनों का जो नौ प्रकार का शेष शेषित्व प्रभृतिक सम्बन्ध है तादृश सम्बन्ध स्वरूप को जाननेवाले जो विद्वान् श्रीवैष्णव प्रपत्ति परायण व्यक्ति हैं वे लोग मोक्ष के कारण रूपसे लोग में प्रसिद्ध कर्मयोग ज्ञानयोग तथा भक्तियोग रूप उपायान्तर को अर्थात् प्रपत्ति भिन्न उपायान्तर को श्रीरामजी की प्रपत्ति रूप जो मुख्य मोक्ष का साधन है तादृश साधन का विरोधी मानते हैं। अर्थात् लोक प्रसिद्ध जो मोक्ष कारण कर्मयोगादिक हैं वे सव प्रस्तुत प्रपत्ति विरोधी हैं सकामानुष्ठेय होने से ॥५२॥

लोकसंग्रहणार्थन्तु श्रुतिचोदितकर्मणाम् ।
शेषभूतैरनुष्ठानं तत्कैङ्कर्यपरायणैः ॥५३॥

भगवान् के कैङ्कर्य निष्ठ अथवा सर्व प्रकार से भगावान् की सेवा में तत्पर तथा श्रीरामजी के शेषभूत अर्थात् भगवान् के लिए यवेच्छ विनियोग योग्य वैष्णवगण लोक संग्रह करने के लिए श्रुति विहित नित्यनैमित्तिक कर्मादि का अनुष्ठान करते हैं न तु मोक्ष में सहायक है अर्थात् मोक्ष का कारण है यह समझकर। क्योंकि वे तो अपना सकल भार श्रीरामजी को सौंपकर स्वयं सकामान्य व्यापार से निवृत्त हो गये हैं। जो भगवान् की सेवा से विमुख हैं वे लोग स्वर्गादि प्राप्ति करने के लिए भले ही सकाम यागादिक कर्मानुष्ठान करें ॥५३॥

रामप्रसादहेतुर्हि न्यासोऽयं विनिगद्यते ।
नित्यशूरैः सदाचारैर्हरिपादाब्जमानसैः ॥५४॥

भगवान् के अति समीप में सर्वदा निवास करते हुए भगवान् श्रीरामजी की सेवा में सर्वदा संलग्न नित्यसूरि श्रीहनुमदादि तथा सदा सदाचार युक्त एवं भगावान् श्रीसाकेतनिवासी श्रीरामजी के चरणकमल में मनको सर्वदा संलग्न रखनेवाले महापुरुषगण इस उपर्युक्त न्यास को भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की प्रसन्नता का कारण कहते हैं ॥५४॥

कृतप्रपत्तिस्मरणं प्रायश्चित्तमथोच्यते ।
परमाप्तैश्च तन्निष्ठैः कोविदैस्तैर्मुमुक्षुभिः ॥५५॥

परम आप्त भगवान् की सेवा में परायण श्रीरामजी के चरणकमल में निवेशित चित्तवाले मुमुक्षु-मोक्षाभिलाषि श्रीवैष्णवगण कृत सर्वेश्वर श्रीरामजी की प्रपत्ति का जो स्मरण है तादृश स्मरण को ही प्रायश्चित्त कहते हैं। एतदतिरिक्त प्रायश्चित्त नहीं है ॥५५॥

उत्कृष्टवर्णैरपि वैष्णवेर्जनैर्निकृष्टवर्णः स तदीयसेवने ।
तथानुसर्तव्य इतिष्यते बुधैः शास्त्रैर्विधेये विधिगोचरैः परैः ॥५६॥

शास्त्र प्रतिपादित यागादिक कर्मों में श्रद्धा रखनेवाले वैष्णव महात्मा और उच्च ब्राह्मणादि जातीयक वैष्णवगण ब्राह्मण जाति व्यतिरिक्त क्षत्रिय वैश्यादि जातीयक श्रीवैष्णवों को शास्त्र प्रतिपादित सेवा करने के लिए अनुसरण अर्थात् ब्राह्मण जातीयक

श्रीवैष्णव भी क्षत्रियादि जातीयक साधुओं की सेवा करें न तु नीच जातीयक समझ करके भेदभाव रखकर उनका अनादर करे। तथा क्षत्रियादि जातीयक श्रीवैष्णव भी उच्च जाति के परमैकान्तिक ब्राह्मण श्रीवैष्णवों की सेवा के लिए अनुसरण करे। अर्थात् उच्च जातीयक श्रीवैष्णव इतर जातीयक साधुओं का यथोचित सेवार्थ अनुसरण करे अर्थात् सेवा करें। इतर जायतीयक साधु भी उच्च जातीयक साधुओं की सेवा करें। न तु ब्राह्मण श्रीवैष्णव अपने मन में मैं ब्राह्मण हूँ, मैं तदितर की सेवा कैसे करुँगा तथा इतर जातीयक श्रीवैष्णव मैं साधु हूँ, मैं मठाधीश हूँ, इस नवागत की सेवा किस तरह करुँगा। इत्यादि वृथाभिमान करके "जातिपाति पूछे नहिं कोई। हरि को भजे सो हरि का होई" इत्यादि को लक्ष्य में रखकर साधु का अपमान न करें। परस्पर सन्तों में वृथाभिमान देखकर आचार्य श्री ने कहा है "**उत्कृष्टवर्णैरित्यादि**" यह कहना सर्वथा ठीक है। भेदभाव रखने के कारण से ही सम्प्रदाय दूषित हो गया है इस पर मनीसी जनों को गहनता से विचार करना चाहिए ॥५६॥

अणुव्याप्तौ च भगवानणुषु त्वणुरुच्यते।
पराकाष्ठापरैर्विज्ञैर्मतविद्भिर्महात्मभिः ॥५७॥

विद्वान् स्वकीय मत को जाननेवाले श्रीवैष्णव महात्माओं ने जीव में भगवत् व्याप्ति को अणु से भी अणु रूप से बताया है ॥५७॥

आत्मारामैस्तथोपाय स्वरूपज्ञानिभिश्च तैः।
मतज्ञैर्विरजापारं कैवल्यमिति मन्यते ॥५८॥

सम्प्रदाय के यथार्थ ज्ञानवान् तथा उपाय स्वरूप के वेत्ता आत्माराम परमैकान्तिक श्रीवैष्णव महापुरुष कैवल्य-दिव्यधाम श्रीसाकेत को विरजा नामक नदी के उस पार मानते हैं ॥५८॥

जितेन्द्रियश्चात्मरतोबुधोऽसत् सुनिश्चितं नाम हरेरनुत्तमम्।
अपारसंसारनिवारणक्षमं समुच्चरेद्वैदिकमाचरन् सदा ॥५९॥

जितेन्द्रिय अर्थात् वाह्यज्ञानकरण तथा आभ्यान्तर मन इन्द्रिय के ऊपर विजय प्राप्त तथा अखिल प्रपञ्च कारण परमात्मा में अनुराग और विश्वास रखनेवाले सम्प्रदायज्ञ विद्वान् वेद प्रतिपादित शुभ कर्मों का आचरण अनुष्ठान करते हुए अपार संसार के अर्थात् जन्ममरणादि के निवारण करने में सर्वथा समर्थ अतिशय मनोज्ञातिसरल

भगवान् श्रीरामजी का "राम" इत्याकारक नाम का निरन्तर स्मरण करें ॥५९॥

श्रीवैष्णवमताब्जभास्कतरे चतुर्थपरिच्छेदः

अथ मुख्यधर्मात्मकश्रीवैष्णवधर्मनिरूपणम्

एवन्तेऽभिहितं वत्स ? प्रकृष्टं मुक्तिसाधनम् ।
उत्तमं सर्वधर्माणां श्रृणु धर्मं सनातनम् ॥१॥

पूर्व प्रकरण में अनेक प्रकार से प्रतिपादित मोक्ष साधनोपदेश का उपसंहार करते हुए कहते हैं-"एवं तेऽभिहितम्" इत्यादि। हे वत्स ? सुरसुरानन्द ? मैंने तुमको अनेक प्रकार के मोक्ष साधन उपायों का कथन किया। इसके वाद धर्मों में श्रेष्ठ सनातन धर्म का उपदेश देता हूँ। उसको तुम सावधान मन से सुनो और सुनकर उसका आचरण करो ॥१॥

दानं तपस्तीर्थनिषेवणं जपो नचास्त्यहिंसा सदृशं सुपुण्यकम् ।
हिंसामतस्तां परिवर्जयेज्जनः सुधर्मनिष्ठो दृढधर्मवृद्धये ॥२॥

दान तप तीर्थ सेवन तथा जपादिक अहिंसा के समान अतिश्रेष्ठ पुण्य नहीं है। अर्थात् दानादिकों में पुण्य रूपता तो है परन्तु अहिंसा के वरावर यह सव दानादिक नहीं हैं। अतः सर्वधर्मोत्तम श्रीवैष्णव धर्म में ही निर्वाह करनेवाले प्रयत्न पूर्वक हिंसा का त्याग कर दे ॥२॥

श्रयन्तिधर्मास्तु तया पृथक् स्थितान् सुवक्रगाः सिन्धुमिवापिनिम्नगाः।
काष्ठस्थवह्नेरिव घातको हरेश्चराचरस्थस्य च जन्तुहिंसकः ॥३॥

जिसतरह उच्च नीच वक्र और सरल सीधा होकर के चलनेवाली बहती हुई नदी समुदाय गङ्गा सिन्धु कावेरी प्रभृतिक सव नदीयाँ साक्षात् परम्परया वा अगाध जलराशि समुद्र का ही आश्रय लेते हैं। उसी तरह जितना कोई दया प्रभृतिक धर्म समुदाय हैं वे सवके सव हिंसा रहित अर्थात् अहिंसक व्यक्ति का ही आश्रय लेते हैं। वही व्यक्ति दया शौचादि धर्मवान् हो सकता है जिसके अन्दर हिंसा नहीं है अर्थात् अहिंसक है। श्लोक घटक "च" शब्द हेत्वर्थक है। चराचर में अन्तः अनुप्रविष्ट होकर के सर्वत्रावस्थित भगवान् का वह हिंसक व्यक्ति घातक है काष्ठस्थ वह्नि की तरह अर्थात् जिस तरह काष्ठ के अन्दर में रहनेवाला वह्निकाष्ठाश्रित पदार्थों का तथा काष्ठ का दाहक होता है उसी तरह हिंसक सर्वव्यापक भगवान् को दुःख देनेवाला

होता है इसलिए विवेकी व्यक्ति को चाहिए सर्व प्रथम अहिंसा व्रत का ग्रहण करें वेद में कहा है-मा हिस्यात् सर्वाणि भूतानि "अहिंसत् सर्वभूतेभ्यः" इत्यादि। पुराणों में भी कहा है-

"नाऽहिंसा सदृशं दानं नाहिंसा सदृशं तपः।
नाहिंसा सदृशं तीर्थं पुण्यभूषणशोभने ॥"

यथा वक्रगतानद्यः सिन्धौ चैव विशन्ति हि।
तथैव धर्माः श्रयन्ति हिंसाहीनेषु साधुषु ॥" इति ॥

अतः प्रत्येक धर्म अहिंसक व्यक्ति के आश्रय में ही रहता है। इसलिए अहिंसा परमावश्यक है ॥३॥

जलस्थलोत्पन्नशरीरहिंसया विवर्जयेन्मांसमुदारधीः सदा।
दयापरोऽधोगतिहेतुरूपयाऽचिराय लभ्यं भवभीनिवृत्तये ॥४॥

उदार बुद्धि वाले अर्थात् **"शुनिचैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः"** इत्यादि वचन प्रमाण से परमात्मा की सर्वत्र व्याप्ति होने से जीवमात्र पूज्य हैं, एतादृश बुद्धिवाले तथा दया परायण पुरुष अधोगति नरकादि गति के कारण जलस्थल में जायमान प्राणियों की हिंसा से ही प्राप्त होने के योग्य मांस को संसार भय निवृत्ति के लिए अर्थात् जन्ममरणादिक दुःख की निवृत्ति के लिए सर्वदा मांस भोजन का परित्याग कर दें अर्थात् मांस भक्षण न करें ॥४॥

न स्त्रियं परिगृह्णियाद्विरक्तो वैष्णवः क्वचित्।
मन्वादिस्मृतिशास्त्रेषु तन्निषेधस्य शासनात् ॥५॥

जिस तरह सर्वधर्म श्रेष्ठ अहिंसा धर्म का पालन करना विरक्त श्रीवैष्णव का धर्म है अतः अहिंसा धर्म का उपदेश किया। उसी तरह परिग्रहाभाव भी श्रीवैष्णव धर्म है, यह समझकर अपरिग्रह धर्म को बतलाने के लिए प्रथमतः दार परिग्रह निराकरण के लिए कहते हैं→**'नस्त्रियं परिगृह्णीयादित्यादि।'** विरक्त श्रीवैष्णव किसी भी देशकाल में किसी भी अवस्था में दारपरिग्रह न करें। क्योंकि मनु याज्ञवल्क्य पराशर प्रभृतिक स्मृति ग्रन्थों में विरक्त दीक्षा संप्राप्त भागवतों के लिए दारपरिग्रह का निषेध किया गया है इसलिए विरक्त दीक्षा से दीक्षित श्रीवैष्णव दारपरिग्रह यानी विवाह न करें। यह आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी यतीन्द्र की आज्ञा है ॥५॥

विवाहे तु कृते सस्यादारूढपतितो ध्रुवम् ।
आरूढपतितस्यार्थे प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥६॥

विरक्त श्रीवैष्णव को विवाह करने पर क्या दोष है ? हजारों लोग तो विवाह करते ही हैं इस आशंका के उत्तर में कहते हैं "**विवाहेतु कृते**" इत्यादि । श्रीवैष्णवमत की भागवती विरक्त दीक्षा लेने के वाद यदि विरक्त व्यक्ति विवाह करलेता है, तो वह आरूढ पतित हो जाता है । और जो आरूढ पतित हो गया, उसको पुनः शुद्ध करने के लिए, शास्त्र में किसी प्रकार का प्रायश्चित्त का विधान नहीं है । यही महान् दोष आरूढ पतितत्व का होता है अतः विरक्त दीक्षा प्राप्त श्रीवैष्णव विवाह न करें ॥६॥

प्रच्युतो नैष्ठिकाद्धर्मादात्महापि प्रकीर्तितः ।
मठाध्यक्षत्वदीक्षादौ बहिष्कार्यः स यत्नतः ॥७॥

जो व्यक्ति नैष्ठिक धर्म से अर्थात् विरक्त श्रीवैष्णव धर्म से गिर गया, वह आत्महा भी कहलाता है । क्योंकि आत्मा का उद्धार करने के लिए विरक्त धर्म का आश्रय लिया था । परन्तु उस पवित्र धर्म से पतित होने पर उसने अपनी आत्मा को नरक में डाल दिया ऐसा जो व्यक्ति है उसको अति पवित्र मठाध्यक्षत्व-स्थान का महन्त दीक्षादि कार्यों से विल्कुल बाहर करदेना चाहिए ॥७॥

व्यासेन ब्रह्मविद्यातो बहिष्कारोऽस्य सूचितः ।
शिष्टा यज्ञादिकार्येषु वर्जयन्ति तथा विधम् ॥८॥

वेदाचार्य भगवान् व्यासजी ने भी आरूढ पतित को ब्रह्मविद्या में अधिकार नहीं है, अर्थात् ब्रह्मविद्या से तादृश व्यक्ति को बहिष्कृत किया है । और शिष्ट लोगों ने भी यज्ञ दानादि कार्यों से आरूढ पतित को बहिष्कृत करदिया है । आरूढ पतित को दानादिक लेने में अधिकार नहीं है ऐसा कहा है ॥८॥

विरक्तैर्वैष्णवैस्तस्मादारूढपतितो न हि ।
व्यवहारेषु योक्तव्यस्तत्संसर्गोऽपि पापकृत् ॥९॥

आरूढ पतित के लिए शुद्ध्यर्थ शास्त्र में प्रायश्चित्त का विधान नहीं है । तथा श्रीसम्प्रदायाचार्य व्यासजी महाराज ने ब्रह्मविद्या में पतित का अधिकार नहीं रखा है । याजक शिष्टगण ने यागादि क्रिया में पतित को अधिकार नहीं दिया है । इसलिए विरक्त

श्रीवैष्णव को चाहिए कि आरूढ पतित को भोजन संभाषणादि व्यवहार में शामिल न करें। अर्थात् श्रीरामार्चादिक महान् कार्यों में पङ्क्त में बोलचालादि में पतित का संसर्ग न करें। क्योंकि पतित के साथ जो संसर्ग है वह भी पाप का जनक है अर्थात् **संसर्गजा देषगुणा भवन्ति** उक्ति के अनुसार उसके संसर्ग से पाप लगेगा अतः उसे त्याग दें ॥९॥

समर्प्यकर्माणि शुभानि वैष्णवो रामाय भक्ष्यं च निवेद्य भक्षयेत्।
अहर्दिवं वीतभयं समुत्तमं विमुक्तधीः स्वाघनिवृत्तिकामनः ॥१०॥

स्वकीय पाप कर्मों की निवृत्ति पूर्वक मोक्ष प्राप्त करने की इच्छावाले जो विरक्त श्रीवैष्णव हैं वे लोग अहोरात्र में कृत क्रियमाण शुभ कर्मों का जगत् कारण भगवान् श्रीरामजी को समर्पित करके भगवान् को शुद्ध भाव से समर्पित भक्ष्यभोज्याद्यन्यतम शुद्ध भोजन का प्रसाद रूपमें ग्रहण करें। एतादृश भगवत् प्रसाद का भोजन करके महापुरुष जन्ममरणादिक संसार भय से निवृत्त होकर परम पद को प्राप्त करते हैं ॥१०॥

॥ अथ अर्चावतारनिरूपणम् ॥

अर्चावतारोऽपि च देशकालप्रकर्षहीनः श्रितसम्मतश्च।
सहिष्णुरप्राकृतदेहयुक्तः पूर्णाऽर्चकाधीनसमात्मकृत्यः ॥११॥

पूर्व प्रकरण में कहा है कि भगवान् की प्रशस्त अन्नादिक का समर्पण करके, उनका जो प्रसाद विशुद्ध भोज्य पदार्थ है उसका भोजन भक्त लोग करें।

तो इसप्रकार नैवेद्य समर्पण किस तरह किस जगह तथा किसको करें ? इस जिज्ञासा के उत्तर में आचार्य श्री कहते हैं **"आर्चावतारोपि च"** सर्वावतारी सर्वेश्वर श्रीरामजी का जो अर्चावतार है वह जिस तरह परव्यूह विभवादिक देशकाल का प्रकर्ष होते हैं उसी तरह अर्चावतार देशकाल भेद से अल्प अधिक महत्त्वशील नहीं है। अर्थात् साकेतादि पवित्र प्रदेश में सत्ययुगादि काल में अर्चावतार का अधिक महत्व था ग्रामादिक प्रदेश में कलियुगादि काल में अल्प महत्व है ऐसा नहीं किन्तु भगवान् सर्वदेश सर्वकाल में समफलप्रद होते हैं यही अर्चावतार की विशेषता है। तथा भक्तों का अभिमत द्विभुज चतुर्भुज बालकादि भेद भिन्न होकर पूजित होते हैं। अर्थात् भक्त अर्चक का समस्त अपराधों का सहन करने का स्वभाव वाले हैं। तथा परिपूर्ण सर्वत्र व्यापक हैं। तथा समस्त सामर्थ्यादि धनधान्यादि परिपूर्ण हैं। तथा अर्चावतार भगवान्

का सर्व स्नान भोजनादिक कार्य अर्चक-भक्त के अधीन है। एतादृश विभूति को अर्चावतार कहते हैं ॥११॥

स्वयं व्यक्तश्च दैवश्च सैद्धो मानुष एव च ।
देशादौ हि प्रशस्ते स वर्तमानश्चतुर्विधः ॥१२॥

वह भगवान् स्वयमेव व्यक्त-प्रादुर्भूत देव सिद्ध मनुष्यादि स्थापित भेद से प्रशस्त साकेतादि पवित्र प्रदेश में वर्तमान चार प्रकार से विभक्त होकर के अवस्थित हैं ॥१२॥

आवाहनासनाभ्यां च पाद्याद्याचमनैस्तथा ।
स्नानवस्त्रोपवीतैश्च गन्धपुष्पसुधूपकैः ॥१३॥
दीपनैवेद्यतांबूलप्रदक्षिणविसर्जनैः ।
षोडशार्चाप्रकारैस्तमेतैरर्चेत्सदा सुधीः ॥१४॥

यथोक्त क्रम से सभेद अर्चावतार का कथन करके तदीय पूजा प्रकार को बतलाने के लिए आचार्यजी कहते हैं "**आवाहनेत्यादि** । भजनानन्दी महापुरुष प्रातः उठकर के शौचादि स्नानान्त प्रात्यहिक कर्मकर लेने के वाद सम्मार्जित पूजा स्थान में बैठकर के आवाहन आसन पाद्य अर्घ्य आचमन स्नान वस्त्र यज्ञसूत्र गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य ताम्बूल प्रदक्षिणा और विसर्जनान्तः षोडशोपचार विधि से समन्त्रक भगवान् का पूजन करें। यदि पूजक महापुरुष द्विज हों तव तो पुरुषसूक्त प्रतिपादित मन्त्रों से पूजन करें ! द्विजेतर हों तव पुराणोक्त मन्त्र द्वारा पूजन करें। विशेष पूजा प्रकार श्रीआनन्दभाष्यकार प्रणीत **श्रीरामार्चनपद्धति** एवं मेरी टीका प्रकाश में देखें।१३/१४।

जगत्पते ? श्रीश ? जगन्निवास ? प्रभो ? जगत्कारण ? रामचन्द्र ?
नमो नमः कारुणिकाय तुभ्यं पादाब्जयुग्मे तव भक्तिरस्तु ॥१५॥

हे जगत्पति श्रीसीतानाथ हे जगन्निवास जगत्कारण भगवान् श्रीरामजी ? दया सागर आपके श्रीचरण में मेरा शतशः नमस्कार हो तथा आपके पदयुग्म में सदा मेरी भक्ति बनी रहे ॥१५॥

मनोमिलिन्दस्तवपादपङ्कजे रमार्चिते संरमतां भवे भवे ।
यशः श्रुतौ ते मम कर्णयुग्मकं त्वद्भक्तसंगोऽस्तु सदा मम प्रभो ॥१६॥

हे भगवन् श्रीरामचन्द्रजी ? मेरा अन्तःकरण रूप भ्रमर मधुपान कर्ता जन्तुविशेष सकल सौभाग्यवती श्रीसीताजी से समादृत आपके पद युगल में सर्वदा रमित होता रहे। तथा मेरे दोनों श्रवणेन्द्रिय आपके यश कीर्ति को सुनने में संलग्न रहे और आपके जो अन्य भक्त हैं उनके साथ हमारा सत्संग होता रहे। अर्थात् मैं भक्तों के साथ ही वार्तालाप करता रहूँ ॥१६॥

उरः शिरोदृष्टिमनोवचः पदद्वयप्राजत्करयुग्मजानुभिः ।
अङ्गैःक्षितौ तं प्रणमेदथाष्टभिर्दीर्घं तथैतैः कृतधीश्चदण्डवत् ॥१७॥

भगवान् की प्रार्थना करने के वाद प्रणाम करने का प्रकार बतलाने के लिये आचार्य श्री कहते हैं-'**उरः शिरोदृष्टीति**' भगवान् परम कारण परमात्मा को प्रणाम करने के लिए निश्चित बुद्धिवाले महापुरुष मन, वचन, दोनों पैर, दोनों जानु घुटना छाती शिर मस्तक नेत्रयुग तथा फैलाया हुआ दोनों बाँह हाथ इन आठों प्रकार के अंगों से पृथिवी में दण्ड की तरह लेटकर-गिरकर भगवान् परमपुरुष श्रीरामजी को भक्त लोग प्रणाम करें ॥१७॥

बाहू च पादौ च प्रसार्य साञ्जलिः स्तवैः स्तुवन् यश्च नमेद्रघूत्तम् ।
शतैः क्रतूनां तु सुदुर्लभां गतिं स चाप्नुयाद्रामपरायणो जनः ॥१८॥

भगवान् श्रीरामजी के अनन्य भक्त अञ्जलि बन्धन पूर्वक पूर्वाचार्यकृत विलक्षण स्तोत्र समुदाय से सर्वेश्वर श्रीरामजी का स्तवन करते हाथ पैर को फैला करके दण्डवत् प्रणाम करें। ऐसा करने से हजारों यज्ञ करने से जो फल नहीं प्राप्त होता है तादृश फल को अर्थात् साकेत प्राप्तिरूप फल को प्रणाम कर्ता प्राप्त करता है ॥१८॥

श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे पञ्चमपरिच्छेदः

अथ श्रीवैष्णवभेदनिरूपणम्

अथोच्यते वैष्णवभेद ईप्सितो ज्ञातुं च ते विष्णुपरायणैर्जनैः ।
सुवेदनीयो बहुधा महामते ? सुनिश्चितो विज्ञवरैर्महर्षिभिः ॥१॥

अर्चावतार तथा तदीय पूजन और प्रणामादि प्रकार को बतलाने के वाद श्रीवैष्णव के भेद को बतलाने के लिए आचार्यश्री कहते हैं-"**अथोच्यते**" इत्यादि।

हे महामते सुरसुरानन्द ? अर्चावतार तत्पूजनादि प्रकार का कथन के वाद श्रीरामभक्त जनों को अवश्य जानने के योग्य, सवका अवश्य ज्ञातव्य विद्वान् महर्षियों

ने सुनिश्चित किया हुआ श्रीवैष्णवों का भेद मैं तुमको कहता हूँ। तुम उसको वरावर समझो ॥१॥

प्राप्तुं परां सिद्धमकिञ्चनो जनो द्विजातिरिच्छञ्छरणं हरिं व्रजेत् ।
परं दयालुं स्वगुणानपेक्षितक्रियाकलापादिकजातिबन्धनम् ॥२॥

भगवान् से अतिरिक्त भगवान् के प्राप्ति का कारण लौकिक उपाय से रहित द्विजाति भक्तजन परम मोक्ष की प्राप्ति की इच्छा से स्वकीय वात्सल्यादि गुणों से ब्राह्मणत्वादि जाति तथा विद्यादिक गुणों की अपेक्षा नहीं रखनेवाले परम दयालु सर्वेश्वर श्रीरामजी के शरण में जावें। अर्थात् सर्वशरण्य श्रीराम शरणागति का स्वीकार करें।२।

जीवो द्विधाऽमन्यत बद्धमुक्त भेदेन पूर्वैस्तु महर्षिवर्यैः ।
बद्धोऽपि तत्र द्विविधो मुमुक्षुबुभुक्षुभेदाद् गदितो मतज्ञैः ॥३॥

प्राचीन श्रीपराशरादि महर्षिगण कहते हैं कि बद्ध तथा मुक्त के भेद से जीवगण दो प्रकार में विभक्त होते हैं। तथा जो श्रीसम्प्रदाय को जाननेवाले हैं वे लोग कहते हैं कि बद्ध जीव भी मोक्षाभिलाषी तथा भोगाभिलाषी भेद से पुनः दो प्रकार के होते हैं ॥३॥

अनादिकर्मोत्करजातनाना देहाभिमानी सुमतोऽथ बद्धः ।
स चाच्युताहेतुकृपाबलेनाविद्याक्रियावासरुचिप्रवृत्तेः ॥४॥
विमोक्तुमिच्छुस्तु मुमुक्षुरुक्तः सम्बन्धतः प्राज्ञसुसंमतोऽयम् ।
तथैव सांसारिकभोगमिच्छुर्बुभुक्षुरन्यः कथितो वुधेन्द्रैः ॥५॥

अव बद्ध तथा मुक्त जीव का लक्षण अनुक्रम से दो श्लोकों से बतलाते हैं। अनादि कालिक सञ्चित जो शुभाशुभ कर्म समुदाय उसके बल से जायमान अण्डज जरायुग उष्मज तथा स्थावरादि भेदभिन्न अनेक प्रकारक शरीर के अभिमानी जीवराशि को विद्वान् लोगों ने बद्ध जीव कहा है। ये बद्ध जीव यदि भगवान् श्रीरामजी के अहेतुक स्वाभाविक कृपा से अविद्या जनित संसार प्रापक कर्म समुदाय तथा तदनुगुण वासना में आसक्ति पूर्वक तत्परता के सम्बन्ध से छुटकारा पाने की इच्छा करते हैं तो तादृश जीव को मुमुक्षु कहा गया है। और उसी तरह अविद्या को वढानेवाला जो सकाम कर्म तथा तदनुकूल वासना में आसक्ति पूर्वक प्रवृत्ति तत्परता के सम्बन्ध से

सांसारिक भोग की ही इच्छा करनेवाले जीवराशि हैं उन्हें पण्डित लोग बुभुक्षु कहते हैं। यह मुमुक्षु बुभुक्षु का सामान्य लक्षण है ॥४-५॥

मुमुक्षवोऽपि द्विविधा महर्षिभिः प्रोक्ता अकामाः स्मृतिभक्तिशालिनः।
वेदोक्तवर्णाश्रमकर्मकारिण स्तूपासकादिप्रतिभेदभेदिताः ॥६॥

मुमुक्षु भी दो प्रकार के होते हैं ऐसा प्राचीन ऋषियों ने कहा है। एक तो ज्ञानाद्य साधन तथा द्वितीय वह है जो चेतनान्तर साधन। इनमें ज्ञानाद्यसाधन का लक्षण यह है कि जो भगवत् प्राप्ति का साधन मानकर ज्ञानयोग कर्मयोग भक्तियोगों का ग्रहण करने में कामना रहित होकर भगवान् की आज्ञा से अथवा लोक संग्रह के लिए वेदस्मृति प्रतिपादित वर्णाश्रम कर्म का सम्पादन करते हुए तैलधारा की तरह अविच्छिन्न स्मृति प्रवाह रूप भक्ति में निष्ठावाले को ज्ञानाद्य साधन कहते हैं। यह भी दो प्रकार का होता है। उपासक और शुद्ध भक्त इन सवका लक्षण तथा उदाहरण आगे बतलाया जायगा ॥६॥

स्वकर्मविज्ञानसभक्तिसाधनं तथोररीकृत्य सुविज्ञ ? कञ्चन।
संप्राप्य सम्बन्धविशेषमुत्तमं सदा भवन्त्येव च मोक्षनिश्चयाः ॥७॥

अकाम मुमुक्षु का लक्षण बतला करके चेतनान्तर साधन मुमुक्षु का लक्षण को बतलाते हैं **'स्वकर्म विज्ञान सभक्तीत्यादि'**। हे सुविज्ञ ? सुरसुरानन्द ? जो चेतनान्तर साधन मुमुक्षु लोग हैं वे सव ज्ञानयोग तथा भक्ति योग को ही भगवान् श्रीरामजी के प्राप्ति में प्रधान-साधन कारण मान करके तथा नौ प्रकार का जो सम्बन्ध है-उनमें अन्यतम सम्बन्ध को अर्थात् जिस किसी अभिमत सम्बन्ध को गुरु-शास्त्र द्वारा प्राप्त करके अपने को सर्वदा सायुज्य अर्थात् संसार निवृत्ति पूर्वक नित्य निरतिशय सुख प्राप्ति रूप मोक्ष का अधिकारी मानते हैं। अर्थात् हमको सायुज्य लक्षण मोक्ष अवश्यमेव प्राप्त होगा ऐसा निश्चयवाले होते हैं ॥७॥

विहाय चान्यत्परमं दयानिधिं प्राप्यं समर्थं निरपायमीश्वरम्।
उपायमेतेऽध्यवसीय सुस्थिता ज्ञेयाः प्रपन्नाः सततं हरिप्रियाः ॥८॥

हे सुरसुरानन्द ? जो व्यक्ति कर्मज्ञान और भक्ति योग को छोडकर सर्व प्राप्य सर्वशक्तिमान् सर्वेश्वर नाश रहित परम कारुणिक ईश्वर श्रीरामजी उपाय अर्थात् संसार

से निकलने का कारण समझकर शान्तचित्त होकर के बैठे हैं। उनको भगवत् प्रिय प्रपन्न महात्मा समझो ॥८॥

पुरुषकारैकनिष्ठास्तु हरिस्वातन्त्र्यमैक्ष्य च
कृपाप्रचुरमाचार्यं मत्त्वोपायमवस्थिताः ॥९॥

पुरुषकार अर्थात् पुरुष प्रयत्न में विश्वास रखनेवाले व्यक्ति भगवान् की स्वतन्त्रता का अनुभव करके परमकृपालु आचार्य श्री को परंपरया मोक्ष का उपाय मानकर के निश्चिन्त हो जाते हैं। अर्थात् गुरु प्रदर्शित मार्ग का ही अवलम्बन करते हैं ॥९॥

द्विविधास्ते निजाचार्यकृपामात्रप्रपन्नकाः ।
तथा सेवातिरेकप्रपन्नाश्चेति सदा सताम् ॥१०॥

जो केवल पुरुषाकार मात्र में विश्वास रखनेवाले हैं वे भी दो प्रकार के हैं एक तो आचार्य कृपापात्र प्रपन्न और द्वितीय सत्पुरुष सेवातिरेक प्रपन्न इस तरह ये दोनों प्रकार का भेद प्राचीनाचार्य परम्परा वालों का अभिमत है ॥१०॥

प्रपन्नश्चापि दृप्तः स तथा चार्त इति द्विधा ।
शरीरस्थितिपर्यन्तमाद्योऽत्रैव यथोचितम् ॥११॥

प्राप्तदुःखादिभुञ्जानः शरीरान्तेऽवसीय च ।
महाबोधोऽतिविश्वासो मोक्षसिद्धिमवस्थितः ॥१२॥

जो प्रपन्न भक्त हैं वे भी दो प्रकार के हैं। एक तो दृप्त और द्वितीय आर्त। इन दोनों प्रपन्नों के मध्य में जो दृप्त है वह परमज्ञानवान् जहाँ तक शरीर धारण करता है, तावत् कालपर्यन्त भाग्योपनत सुखदुःखादि फल का भोग करते हुए शरीर का विनाश हो जाने के वाद मोक्ष की सिद्धि में निश्चय पूर्वक अतिविश्वास करते हुए अवस्थित रहता है ॥११-१२॥

अथान्योऽसहमानस्तत्क्षणमेव तु संसृतिम् ।
तथैव भगवत् प्राप्तौ सत्वरस्वान्त उच्यते ॥१३॥

दृप्त प्रपन्न का स्वरूप निरूपण करके आर्त प्रपन्न का लक्षण बतलाते हैं "**अथान्योऽसहमानः**" इत्यादि। अथ दृप्त स्वरूप निर्वचन के वाद, जो व्यक्ति सांसारिक दुःखादि बन्धन क्षणभर भी सहन करने में असमर्थ है। तथा भगवान् की

प्राप्ति में अत्यन्त शीघ्रता करनेवाले भक्त हैं एतादृश व्यक्ति को महापुरुषों ने आर्त प्रपन्न कहा है ॥१३॥

श्रवणादिमात्रनिष्ठाः शुद्धभक्ताः प्रकीर्तिताः ।

अन्तर्भाव्यास्तत्र तत्र तथाऽनुक्ता मुमुक्षवः ॥१४॥

जो व्यक्ति परब्रह्म श्रीरामजी के सुयश का सर्वदा श्रवण, स्मरण, कीर्तन, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य और आत्म निवेदनादि अन्यतम भक्ति में ही निष्ठावान्- अर्थात् श्रद्धाशील हैं। उनको प्राचीन महर्षियों ने शुद्ध भक्त कहा है। इन पूर्वोक्त मुमुक्षुओ के लक्षणों में ग्रन्थान्तर में कथित मुमुक्षुओं के जिन अन्य भेदों को नहीं कहा गया है उसको भी पूर्व कथित इन लक्षण में ही अन्तर्भाव होता है ऐसा समझना ॥१४॥

नित्यकादाचित्कभेदान्मुक्तद्वैविध्यमुच्यते ।

नित्याः कदाचित्तत्रापि सिद्धाः सुपुरुषा वराः ॥१५॥

गर्भजन्मादिदुःखं येऽननुभूय स्थिताः सदा ।

सीतारामप्रियाः शश्वदाञ्जनेयादयो मताः ॥१६॥

जो मुक्त जीव हैं वे नित्यमुक्त तथा कादाचित्क मुक्त इसतरह उनका दो भेद होता है। उसमें जो व्यक्ति कभी भी कालत्रय में भी गर्भवास दुःख का अर्थात् जन्ममरणादि दुःखों का अनुभव नहीं किये हों एतादृश विलक्षण पुण्यशाली पुरुषों को नित्यमुक्त कहते हैं। अतः सर्वदा प्राकृतिक बन्धन निमुक्त स्वकीय जीव स्वरूप में अन्तर्यामी के रूप से सर्वदा अवस्थित भगवान् श्रीसीतारामजी का अनुभव करते हैं। अत एव भगवान् श्रीरामजी के प्रिय भक्त जीवों में भी वे सर्वश्रेष्ठ गिने जाते हैं। यथा भगवान् के परम प्रिय आञ्जनेयादि माने गये हैं ॥१५/१६॥

नित्यमुक्ता अपि द्वेधा परिजनाः परिच्छदाः ।

मारुताद्याः किरीटाद्याः क्रमात्ते च प्रकीर्तिताः ॥१७॥

जो नित्य मुक्त जीव हैं वे भी दो प्रकार के होते हैं। परिजन तथा परिच्छद के भेद से। इसमें श्रीहनुमानजी तथा किरीटादिकों का समावेश होता है। अर्थात् किरिट मुकुट वगैरह आभूषणों को तथा पहनानेवाले और सुरक्षित रखनेवाले को

परिच्छद करते हैं। तथा समीपस्थ होकर के बातचीत तथान्यसेवा करनेवाले हजूरिया को परिजन कहते हैं जैसे श्रीहनुमानजी वगैरह ॥१७॥

भागवताः केवलाश्च कादाचित्का अपि द्विधा ।
तत्र भागवता बोध्या ये तेषु भगवत्पराः ॥१८॥

जो कदाचित्क मुक्त हैं वे भी भागवत तथा केवल इस भेद से दो प्रकार के होते हैं। उसमें जो मात्र भगवान् परमकारण श्रीसीतारामजी में ही निष्ठावान् होकर श्रीरामजी का ही सेवा करते हैं वे भागवत हैं, ऐसा जानो ॥१८॥

भगवद्भोग्यभूत्यादिसाक्षात्कारसुखाश्रयाः ।
श्रीराममानसा नित्यं तदनुध्यानतत्पराः ॥१९॥
केचिद् गुणानुसंधानपराः कैङ्कर्यतत्पराः ।
इत्थं महर्षिभिः प्रोक्ता द्विविधा भगवत्पराः ॥२०॥

हे सुरसुरानन्द ? भागवत भी दो प्रकार के होते हैं। इन भगवत् परायण भागवतों में एक तो वे हैं जो कि सम्पूर्ण चराचर जगत् के नायक भगवान् श्रीरामजी के सकल विभूति सम्पत्तियों के साक्षात्कार होने से जायमान जो सुख विशेष तादृश सुख से सुखी होते हुए भगवान् श्रीरामजी में दत्तचित्त तथा सदा भगवान् के ध्यान में संलग्न हों। और द्वितीय भागवत वे हैं जो परब्रह्म परमात्मा श्रीरामजी के गुणों का अनुसन्धान एवं कायिक, वाचिक, तथा मानसिक सेवा में तत्पर रहते हैं। इसप्रकार पूर्वाचार्य महर्षियों ने कहा है ॥१९/२०॥

द्विविधा केवला बोध्या दुःखभावैकतत्पराः ।
आत्मानुभूतिपरमा इति चोक्ता महर्षिभिः ॥२१॥

हे सुरसुरानन्द ? पूर्वाचार्य श्रीव्यासादि महर्षियों ने केवल मुक्त को भी दो प्रकार का बतलाया है। एक तो वे जो सुख तथा सुखोपाय में भी दुःख की भावना करनेवाले हैं। अर्थात् आत्म व्यतिरिक्त सभी पदार्थ को दुःख रूप ही समझने की भावना में लगे रहते हैं। और दूसरे वे हैं जो सर्वदा स्वानुभूति में ही संलग्न रहते हैं। अन्य पदार्थ का चिन्तन नहीं करते हैं ॥२१॥

॥ श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे षष्ठःपरिच्छेदः ॥

अथ श्रीवैष्णवलक्षणनिरूपणम्

समुच्यते संप्रति लक्षणं सन् महात्मनां सद्गुणवैष्णवानाम् ।
विरिञ्चिशंभुश्रितरामचन्द्रपदारविन्दस्थितचेतसां हि ॥१॥

हे सुरसुरानन्द ? ब्रह्मा महादेव तथा शेष प्रभृतिक महानुभावों से सर्वदा सेवित जो भगवत् श्रीरामचन्द्रजी के चरणकमल उसमें संलग्न है मन जिनका ऐसे सद्गुणों से विशिष्ट श्रीवैष्णव महात्माओं का चारुलक्षण-प्रशस्त लक्षण बतलाता हूँ। अर्थात् जो अव्याप्ति अतिव्याप्ति तथा असम्भव रूप जो तीन दोष लक्षण के हैं उन दोषों से रहित अत एव मनोज्ञ लक्षण बतलाता हूँ तुम इस लक्षण को जानो ॥१॥

धृतोर्ध्वपुण्ड्रस्तुलसीसमुद्भवां दधच्च कण्ठे शुभमालिकां जनः ।
तज्जन्मकर्माणि हरेरुदाहरेद् गृह्णंश्च नामानि शुभप्रदानि सः ॥२॥

मस्तक प्रभृतिक द्वादश अङ्गों में सम्प्रदाय सिद्ध श्री लस्करी विन्दु प्रभृति तिलक करें तथा कण्ठी अर्थात् तुलसी काष्ठ निर्मित माला का धारण करना शास्त्र सम्मत काषाय वस्त्र का धारण एवं सर्वेश्वर श्रीरामजी के जन्मादि सम्बन्धी श्रीमद्रामायण में वर्णित कथाओं का कथन करना। एवं मोक्ष को देनेवाला जो सर्वेश्वर श्रीरामजी का शुभ श्रीरामनाम है उसका निरन्तर उच्चारण करना अर्थात् श्रीरामनाम का जप सतत करना ये ही ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक विगेरे श्रीवैष्णवों का लक्षण हैं ऐसा शास्त्र का मत है ॥२॥

सीतापतेः संश्रृणुयान्निरन्तरं कथां च गायेत्सुयशोऽङ्कितां मुहुः ।
रूपं तदीयं च चराचरात्मकं पश्यन् सतां सङ्गमुदारधीश्चरेत् ॥३॥

हे सुरसुरानन्द ? उदार मनवाले श्रीवैष्णवगण समस्त जगत् का परम कारण भगवान् श्रीसीतापति मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामजी के सुन्दर यश समुदाय से युक्त जन्म कर्मादिकों का निरन्तर श्रवण करें तथा भगवान् की कथा का स्वयं गान करके लोगों को सुनावें तथा श्रीरामजी के जडचेतनात्मक जो श्री विग्रह है तादृश श्री विग्रहों का दर्शन तथा सत्सङ्गति करते हुए विचरण करें ॥३॥

चापादिपञ्चायुधचिह्निताङ्गकः समीक्ष्य हृष्टश्च हरिप्रियानथ ।
तथा विधान् भक्तिपरः प्रपूजयेत् सुवैष्णवान् जन्मफलादिसंस्तुवन् ॥४॥

भगवत् चापवाणादिक पाँच आयुधों से चिह्नित शरीरवाले श्रीवैष्णव भगवान् श्रीसीतानाथजी की भक्ति करने में सदा तत्पर एतादृश चिह्नाङ्कित स्वेतर श्रीरामभक्तों को देखकर प्रसन्न होते हुए स्वकीय जन्म ग्रहण करने के फल की प्रशंसा करते हुए दूसरे वैष्णवों का जो कि उसके स्थान में आये हुए नवागत श्रीवैष्णव हैं पूजन करें अर्थात् यथा साध्य भोजनादि से सेवा करें ॥४॥

पञ्चायुधाङ्कांकितवैष्णवा ये विप्रा अथ क्षत्रियवैश्यशूद्राः ।
स्त्रियस्तथान्येऽपि च विष्णुरूपा जगत्पवित्रप्रपवित्रिणस्ते ॥५॥
ते सर्वतीर्थाश्रयभूतदेहा देशे महाभागवता वसन्ति ।
यस्मिन् स तद्दर्शनसंस्थितिभ्यां सूते सुपुण्यं निखिलाघशून्यम् ॥६॥

श्रीवैष्णवीय विधि से जो कोई द्विजोत्तम ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र तथा स्त्री जातीयक और तदितर वर्णशंकर निषादादिक इन भगवान् के पञ्चायुध से अङ्कित होते हैं अर्थात् अमोघ श्रीरामायुध तप्त धनुष-बाण से मुद्रित होते हैं वे समस्त वैष्णव तीर्थों का निवास स्थान होने के कारण स्थावर जङ्गमात्मक समस्त संसार को सर्वत्र पवित्र करनेवाले जो सरयू तथा गङ्गानदी एवं ब्रह्मपुत्रादि नदात्मक जितने तीर्थ जगत् में हैं एतादृश उन गङ्गादिक तीर्थों को भी पवित्र करनेवाले होते हैं। तथा विष्णु स्वरूप ही पूर्वोक्त श्रीवैष्णव लोग होते हैं। एतादृश महात्मा श्रीवैष्णव जिस अयोध्यादिक देशों में निवास करते हैं उस देश का दर्शन तथा तादृश पवित्र पवित्रीकृत देश में निवास करने से समस्त पापों का नाश करनेवाला पुण्यपुञ्ज की उत्पत्ति होती है ॥५/६॥

तदर्चनात्तत्पदनीरपानात्तत्सङ्गतेस्तत्प्रणतेर्विधानात् ।
नृणां हि तच्छिष्टसुभोजनाच्च स्यात्कोटिजन्मार्जितपापनाशः ॥७॥

पूर्व कथित चापबाणादि चिह्नचिह्नित मस्तकादि द्वादश स्थानों में ऊर्ध्वपुण्ड्राङ्कित जगत को पवित्र करनेवाले इन विष्णु स्वरूप महाभागवत श्रीवैष्णवों का पूजन, दण्डवत् नमस्कार जो कि सम्प्रदायानुमत है, तादृश प्रणाम चरणोदक का पान तथा आदर पूर्वक उनको दिया हुआ फलादिक नैवेद्यों का प्रसाद रूपसे ग्रहण करनेवाले पुरुष का हजारों जन्म जन्मान्तर सञ्चित पाप कर्म का अग्नि स्पृष्ट इसीका तूलवत् नाश होता है ॥७॥

कार्पासकैः सप्तभिरद्भूतैर्गुणैः सुनिर्मितं तत्कटिसूत्रमुत्तमम् ।
कौपीनकं वस्त्रयुगञ्च धारयेत्तथोर्ध्वपुण्ड्रादिकमेव वैष्णवः ॥८॥

भगवान् श्रीरामजी में उत्तम अनन्या भक्ति का सम्पादन करनेवाले महाभागवत श्रीवैष्णवगण कपास रुई के समानाकार सर्वत्र एक रूप से कते हुए सात सूत्रों से यथोचित् रूपसे निर्मित अत एव अत्युत्तमकटि में धारण करने योग्य कटिसूत्र को धारण करे। तदनन्तर कौपीन लंगोटी को धारण करें तथा एक धोती और एक चादर वा एक साफी अंगोछा को धारण करें जांघिया आदि धारण निषेध है। एवं द्वादश स्थानों में ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगावें। यह श्रीवैष्णवों का पालनीय आचरण है अन्य परिधान श्री वैष्णवीय शास्त्रविरुद्ध है। तथा सम्प्रदायोचित भजन पूजनादिक कार्य यावज्जीवन करें८

श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे सप्तमः परिच्छेदः

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

॥ अथाष्टमं कालक्षेपप्रकरणम् ॥

कार्यो महात्मभिर्नित्यं कालक्षेपो मुमुक्षुभिः ।
परमात्मपरैरित्थं वैष्णवैरिति वर्ण्यते ॥१॥

अथ महाभागवत श्रीवैष्णवों का लक्षण स्वरूप और महात्म्य कथन के अनन्तर यथांत महात्मा किस तरह से समय यापन करें ? इस वात को बतलाने के लिए कहते हैं-"**कार्योमहात्मभिरि**" त्यादि। हे सुरसुरानन्द ? सर्वदा परमात्मा श्रीरामजी की सेवा में तत्पर मोक्ष चाहनेवाले महात्मा श्रीवैष्णवगण इस तरह अर्थात् वक्ष्यमाण प्रकार से कालक्षेप अर्थात् काल यापन करें। वह प्रकार मैं तुमको कहता हूँ सावधान होकर के सुनो ॥१॥

प्रातर्मध्याह्नसायं कृतशुचिकृतिभिः राममभ्यर्च्यसम्यक्
श्रीमद्रामायणेन प्रतिदिनमखिलैर्भारतेन प्रपन्नैः ।
शक्तैरानन्दभाष्यैरथ च शुभतमाचार्यदिव्यप्रबन्धैः
कालक्षेपो विधेयः सुविजितकरणैः स्वाकृतेर्यावदन्तम् ॥२॥

बाह्याभ्यन्तर इन्द्रिय के ऊपर जय रखनेवाला तथा वेदशास्त्र के ज्ञान से और शारीरिक बल सम्पन्न शरणागत श्रीवैष्णव प्रातःकाल मध्याह्नकाल और सायंकाल में

शौच स्नानादि नित्य क्रिया से निवृत्त होकर प्रतिदिन भगवान् श्रीरामजी का षोडशोपचार के द्वारा पूजन करके श्रीमद्रामायण महाभारत भागवतादि ग्रन्थों का तथा भाष्यादि ग्रन्थों के समझने में सशक्त हों तो प्रस्थानत्रयानन्दभाष्य और पूर्वाचार्य श्रीपुरुषोत्तमाचार्य प्रभृतिक महामुनि निर्मित दिव्य स्तोत्रादि के पाठ-पारायण द्वारा यावत् जीवन समय का क्षेप करें ॥२॥

स्नानादि कर्माणि विधाय नित्यं ग्रन्थानमून् संश्रृणुयादशक्तः ।
श्रीरामसन्नामसुकीर्तनं च द्वयानुसन्धानमथो विदध्यात् ॥३॥

यदि भागवत श्रीवैष्णव शरीर के वृद्धत्व अथवा रोगादि कारणों से श्रीमद् रामायण भागवत आनन्दभाष्यादिक ग्रन्थरत्नों का स्वयं पारायण करने में अशक्त हो जाय तो विद्वान् श्रीवैष्णवों के द्वारा उपर्युक्त ग्रन्थों का पारायण करा करके प्रतिदिन उन ग्रन्थों का श्रवण करें। नित्य स्नानादिक क्रिया करके विधिपूर्वक भगवान् श्रीरामजी का यथा मिलितोपचार से पूजन करके कथा का श्रवण करें। भगवान् की समीचीन कथाओं का कीर्तन करें। यदि स्वयं कीर्तन करने में अस्तव्यस्त रहें तो श्रीरामद्वय मन्त्र का जो अर्थ है उसका मन से ही अनुसन्धान स्मरण करें। अर्थात् समर्थ श्रीवैष्णव पूजनादि करके यथाकाल में स्वयं इन ग्रन्थों का पारायण करें यह प्रथम विधि है। स्वयं पारायणाभाव में अन्य द्वारा पारायण करा के उसका श्रवण करें। तदभाव में भगवान् के नाम का कीर्तन करें तदभाव में द्वयादि विशिष्ट मन्त्रार्थ का मन से ही अनुचिन्तन कर काल यापन करें ॥३॥

दिव्येषु देशेषु सतां प्रसङ्गं तदीयकैङ्कर्यपरायणः सन् ।
यावच्छरीरान्तमहर्दिवं तत् कथामुदारां श्रृणुयाद् भवघ्नीम् ॥४॥

भगवान् श्रीरामजी भागवत तथा आचार्य प्रभृतिक श्रीवैष्णवों के कैङ्कर्य-सेवा में निष्ठा रखनेवाले तदीय सेवा श्रद्धाशील श्रीवैष्णवगण दिव्य प्रदेश-अयोध्याजी, चित्रकूट, पञ्चवटी और जनकपुर प्रभृतिक भक्ति पोषक प्रदेशों में जीवन पर्यन्त अर्थात् यावत्पर्यन्त इस पाँच भौतिक नश्वर शरीर का पतन न हो तावत् इन प्रदेशों में निवास करते हुए तथा चिदचिदीश्वर रूप प्रधान तत्त्वत्रय के सपरिकर ज्ञानवान् विद्वानों का सहवास कहते हुए प्रतिदिन धर्म अर्थ काम और मोक्ष रूप फल को देनेवाली भक्ति को सिंचित करनेवाली अति उदार भगवान् श्रीरामजी की श्रीमद्रामायण आनन्द

भाष्यादिक कथा का श्रवण करें। जो यह भगवान् की कथा अनेक जन्मोपार्जित संसार परम्परा है उस संसार का विनाश करनेवाली है अतः उस कथा का श्रवण करें ॥४॥

तत्राप्यशक्ता स्तु कुटीरमात्रं विधाय कुर्युस्त्वथ राघवाद्रौ ।
अन्यत्रवासं च गुरूपदिष्टान् मन्त्राञ्जपन्तो ह्यभिमानशून्याः ॥५॥

आनन्दभाष्य श्रीमद्रामायण भागवतादि ग्रन्थों का स्वयं प्रतिदिन पारायण करने में असमर्थ महात्मागण राघवादि चित्रकूट पर्वत पर अथवा श्रीअयोध्याजी जनकपुर वगैरह प्रदेशों में छोटी सी कुटियाँ बना करके (कुटीर-झोंपडी) अभिमान शून्य होकर के आचार्य गुरु के द्वारा उपदिष्ट जो तारकादि मन्त्रराज हैं उनका जप करता हुआ पुण्यक्षेत्र में निवास करें। जीवनपर्यन्त पुण्यक्षेत्र में वास करता हुआ जप करें ॥५॥

भक्त्यादियुक्तस्य तथाऽनहङ्कृतेर्महात्मनस्तस्य निदेशपालनम्
उपायमेनं चरमं निरन्तरं सुवैष्णवोऽयं विदधात्वतन्द्रितः ॥६॥

ज्ञानयोग, कर्मयोग तथा भक्तियोग रूप मोक्ष का अति महत्वास्पद साधनों से युक्त सर्वथा अहङ्कार-अभिमान विवर्जित जो महाभागवत श्रीवैष्णव हैं उनका जो उपदेश जिस अधिकारी के लिए जैसा कहा गया है उस आज्ञा का पालन आलस्य रहित होकर के करना चाहिये। इस अन्तिम उपाय साधन को निरालसी मोक्षेच्छु श्रीवैष्णव निरन्तर पालन करें ॥६॥

तदर्थपुष्पप्रचयेन सन्ततं तथैव तन्मन्दिरमार्जनादिना ।
तदीयनामाभ्यसनेन तन्मनाः क्षिपेत्स कालं नितरां गतालसः ॥७॥

मोक्ष कामनावान् श्रीवैष्णवगण सर्वदा आलस्य वर्जित होकर के भगवान् श्रीरामजी के पूजन निमित्त फूल तुलसी प्रभृतिक पूजोपकरण का संग्रह करते हुए। तथा मन्दिर भगवान् के आलय को संमार्जित करता हुआ। एवं भगवान् के **'श्रीराम जय राम जय जय राम'** इत्यादि नाम का सर्वदा रटन करते हुए अहोरात्रात्मक काल का क्षेप करे ॥७॥

तीर्थेषु वासेन सतां महात्मनां समागमेनाथ तदर्चनेन ।
जिज्ञासया तद्यशसः श्रवेण तच्छ्रावणेन स्मरणेन तस्य ॥८॥

पूर्व कथित अयोध्या जनकपुर काशी चित्रकूट मथुरा प्रभृतिक पवित्र तीर्थ

स्थानों में भगवान् श्रीरामजी का यथामिलितोपचार से पूजन करके निवास करने से तथा ज्ञात तत्वत्रय महात्मा श्रीवैष्णवों का आगमन से, तथा आगत तादृश महात्माओं का अर्घ्यादि प्रदान द्वारा पूजन करने से, एवं जगत् का परमकारण सर्वेश्वर श्रीरामजी के जानने की इच्छा से भगवान् की श्रीमद्रामायणादिक कथाओं का श्रवण करने से अर्थात् स्वयं समागत श्रीवैष्णवों से सुनने तथा श्रुत कथा का श्रवण दूसरे को करावें। तथा कथादि द्वारा श्रुत जो जगत् कारणभूत भगवान् श्रीरामजी हैं उनका सतत चिन्तन अनुध्यान से तीर्थवासी श्रीवैष्णव अपने काल को वितावें ॥८॥

रामस्य साङ्गस्य सपार्षदस्य सीतासमेतस्य सहानुजस्य ।
कैङ्कर्यमीर्ष्यारहितः प्रकुर्वन् क्षिपेत् स्वकालं सततं सुभक्तः ॥९॥

उपर्युक्त तीर्थादिक स्थानों में निवास करते हुए भगवान् श्रीरामजी के सुभक्तगण ईर्ष्या रहित होकर के अंग देवता पार्षद सहित श्रीसीताजी तथा भरतादिक अनुजों से युक्त भगवान् श्रीरामजी का कैङ्कर्य को करते हुए कालक्षेप करें।

विष्णु भक्त योगी लोग तथा ऋषियों ने श्रीहनुमानजी से पूछा कि श्रीरामजी के अंग देवता कितने हैं ? तथा कौन-कौन हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में श्रीहनुमानजी ने कहा कि वायुपुत्र, विघ्नेश, वाणी, दुर्गा, क्षेत्रपाल, सूर्य, चन्द्रमा, श्रीनारायण, श्रीनृसिंह, श्रीवासुदेव, श्रीवराह स्वशक्ति सहित ये सव श्रीसीताजी, श्रीलक्ष्मणजी, श्रीभरतजी, श्रीविभीषणजी, श्रीसुग्रीवजी, अंगद, जाम्बवान्, और प्रणव-ये सव श्रीरामजी के अङ्गदेव कहे गये हैं रामरहस्योपनिषद् में ॥९॥

श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे अष्टमपरिच्छेदः

अथ प्राप्यनिरूपणम्

तथाविधैस्तैः परमार्थभूतं सुवैष्णवैः प्राप्यमथोच्यते यत् ।
जितेन्द्रियैरात्मरतैर्बुधाग्र्यैर्महत्तमैः स्वाभिमतार्थदोहम् ॥१॥

अथ अष्टम कालक्षेप प्रकरण निरूपण करने के वाद मुमुक्षुओं से प्राप्य पदार्थ क्या है ? इस नवम प्रश्न का उत्तर देने के लिए आचार्य श्री उपक्रम करते हैं **तथाविधैरित्यादि** कालक्षेप निरूपण के वाद स्वकीय मोक्षरूप अभिमत पदार्थ को देनेवाले पारमार्थिक अर्थात् सर्वापेक्षया अत्युकृष्ट जितेन्द्रिय चक्षुरादि बाह्यज्ञानकरण तथा आभ्यन्तर मन को अपने अधिकार में रखनेवाले मननशील पण्डितों में अग्रसर

सर्वश्रेष्ठ तथा परमपुरुष परमात्मा भगवान् श्रीरामजी की भक्ति में श्रद्धा विश्वास रखनेवाले महाभागवत वैष्णवों से प्राप्य अर्थात् प्राप्ति करने के योग्य विलक्षण पदार्थ का मैं कथन करता हूँ। हे सुरसुरानन्द ? तुम इस वात का विश्वास पूर्वक श्रवण करो ॥१॥

श्रीमान् दिव्यगुणाब्धिरौपनिषदो हेतुः शरण्यः प्रभु
र्देवेशो जगतामनादिनिधनो ब्रह्मादिदेवार्चीतः।
तारार्कानलचन्द्रमोबहुमहः सौदामिनीभासकोऽ
जय्योवीरसपत्नशस्त्रनिचयैर्जेता च तेषां मुहुः ॥२॥
नित्यो ब्रह्मविधायकश्च पुरुषो वेदप्रदो ब्रह्मणे
नित्यानां शरणं तपः प्रभृतिभिः सद्योगिनां दुर्लभः।
एकश्चेतनचेतनोभृतजगद्ध्येयः स्वतन्त्रोवशी
स प्राप्योस्ति मुमुक्षुभिः सुगुरुभिः सत्सङ्गिभिस्तत्परैः ॥३॥

जो द्विभुजाकार हैं। सर्वान्तर्यामी होने से पुरुष पद वाच्य हैं श्रीमान् धनधान्यादि रूप श्री से सदा सम्पन्न हैं। अथवा श्री पद वाच्य विदेह कन्या से नित्य युक्त हैं, तथा हेय प्रत्यनीक सर्वज्ञत्व वात्सल्यादि अनन्त कल्याणगुणों का सागर रूप हैं। तथा स्थूल सूक्ष्म साधारण चराचर जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं। तथा शरण हैं अर्थात् शरण में आये हुए प्रपन्न पुरुषों का पालक हैं। **"सकृदेवप्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम"** यह वचन श्रीकोसलेन्द्र सरकार का है। इससे सिद्ध होता है कि शरणागत पालक हैं। तथा समस्त जगत् का सर्ग करने की शक्ति से युक्त हैं ब्रह्मादि देवों का भी ईश्वर शासक हैं। सर्वोत्पादक होने से स्वयं उत्पाद वित्ताश रहित हैं। तथा सुरोत्तम ब्रह्मा हिरण्यगर्भ तथा इन्द्रादिक देव श्रेष्ठों से भी पूजित हैं। तथा सूर्य चन्द्रमा तारागण विद्युत तथा अग्नि के भी प्रकाशक हैं। श्रुति कहती है-**"न तत्र सूर्योभाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति तमेव भान्त मनुभाति सर्वं तस्य भासा जगदिदं विभाति।** तथा जा वीर शत्रुओं के अनेक प्रकार के सस्त्रास्त्र समूहों से भी अजेय हैं। तथा जो उन शत्रुआं के ऊपर वार वार विजय करनेवाले हैं। **"सर्वेषामवताराणाम**

वतारीरघूत्तमः'' इस आगमानुसार वराह नृसिंहावतार लेकर हिरण्याक्ष और हिरण्य कशिपु पर विजय प्राप्त किया। त्रेता में रावण कुम्भकर्णादि के ऊपर विजय प्राप्त किया। तथा जो चेतन बद्ध मुक्त नित्य मुक्तों के भी चेतन हैं **''चेतनश्चेतनानाम्''** इत्यादिश्रुतेः। तथा नित्यों से भी नित्य हैं। अर्थात् नित्य रूपसे प्रसिद्ध जो परमाणु आकाश और जीव राशि हैं इनसे भी नित्य हैं, **''नित्योनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्''** इत्यादिश्रुतेः। तथा जो एक हैं अर्थात् सजातीय द्वितीय रहित हैं। क्योंकि स्वकीय इच्छा मात्र से सर्ववस्तु का साधक होने से सहायकान्तर निरपेक्षत्व हैं। तथा जो जगत्भृत् हैं जगत् का पोषण तथा रक्षण करनेवाले हैं। तथा जो ब्रह्मा चतुर्मुख को सर्गादि में उत्पन्न करके उन्हें वेद पढानेवाले हैं। तथा जो बुध सर्वज्ञ हैं **''यः सर्वज्ञः स सर्वचित्''** इति श्रुतिः। तथा जो तपस्या आदि से श्रेष्ठ योगियों को दुर्लभ हैं। तथा जो वशी हैं सवको अपने अधिकार में रखनेवाले हैं। यद्वा सर्व प्रकाशशील कान्तिमान् हैं। और जो स्वतन्त्र हैं। एतादृश क्लेश कर्म विपाकाशयों से अपरामृष्ट पुरुष विशेष रूप जो सर्वेश्वर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं वे भगवत्परायण सत्सङ्गी आचार्यवान् मुमुक्षुओं से ध्यान करने के योग्य तथा प्राप्य हैं अर्थात् प्राप्त करने के योग्य हैं। उपर्युक्त लक्षण संक्षेप से प्राप्य तत्व श्रीरामजी का बतलाया गया है।२/३।

तथाविधं प्राप्यमथो सुवैष्णवः सुचिन्तयन्नित्यमनुक्षणं प्रिय।
सदा सदाचाररतं गुरुं वरं ज्ञातं भजेताखिलसंशयच्छिदम् ॥४॥

हे प्रिय सुरसुरानन्द ? अथ परम कारण भगवान् श्रीसीतारामजी के ध्यान श्रवणादि के अनन्तर श्रीवैष्णव संसार के असारता का आकलन करके लीला विभूति को छोडने चाहनेवाला विरक्त शिष्य पूर्व कथित अनेक प्रकारक विशेषण विशिष्ट सर्वदा प्राप्ति योग्य सर्वशरण्य श्रीरामजी को प्रतिक्षण चिन्तन करता हुआ भगवान् श्रीरामजी को स्वरूप से तथा गुणों से जानने के लिए सर्वदा सदाचार से युक्त सर्व प्रकारक संशय विपर्ययादिक मिथ्या ज्ञान का निवारक परमतत्व का ज्ञाता तथा परम तत्व में निष्ठा रखनेवाले परम पूजनीय विरक्त गुरु महाराज की सेवा करें। अर्थात् गुरु से तत्त्वज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु की सेवा करें। स्मृति में कहा है **''यथा खनन् खनित्रेण नगेवार्यधिगच्छति। तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूपुरधिगच्छति।''** जिस तरह पुरुष [illegible] जमीन को खोदता हुआ जल को प्राप्त कर जाता है। उसी तरह

सेवक शिष्य सेवा के द्वारा गुरुगत विद्या को जानता है। अतः गुरु सेवा परम आवश्यक है ॥४॥

सत्सङ्गतः सन् विगतस्पृहोमुहू रामं प्रपद्याथ गुरोर्मुखादसौ ।
कर्माखिलं संपरिभुज्य चात्मवान् प्रारब्धमेवं प्रहतान्यकर्म्मकः ॥५॥

संसार सागर परित्याग करने की इच्छा वाला मुमुक्षु विरक्त श्रीवैष्णव पुरुष का वारंवार के सत्संग करने से वैराग्यवान् होकर परमात्मा परायण आचार्य के मुख से श्रीसीतानाथ श्रीरामजी की प्रपत्ति करने से दुरितादुरित प्रारब्ध कर्म से अतिरिक्त संचित तथा क्रियमाण सकल पाप कर्म विनष्ट हो जाते हैं। एवं समस्त प्रारब्ध कर्मफल भोग करने के वाद अर्चिरादि मार्ग के द्वारा मुक्त हो जाते हैं ॥५॥

न्यासात्स्वतन्त्रेश्वरजातसद्दया निर्लूनमायान्वय एव दैशिकः ।
हार्दोत्तमानुग्रहलब्धमध्यसन् नाडीशुभद्वारबहिर्विनिर्गतः ॥६॥
मार्गं ततस्सोऽर्चिरुपैति मुक्तकस्तथार्चिषोऽह्नो दिनतः सुरार्चितः।
आपूर्यमाणं विविधैस्तुवासरैः पक्षं प्रभूतोत्तमशर्मविज्वरः ॥७॥

तदनन्तर मुमुक्षु जीव स्वकीय स्वतन्त्रता का परित्याग करदेने के कारण सर्वशक्ति सम्पन्न सर्वथा सर्व स्वतन्त्र परम कारण भगवान् की समीचीन अहेतुक-अकारण दया अनुकम्पा से माया सम्बन्ध को अर्थात् माया के परम्परा को सर्वथा विनाशित करके श्रीरामजी के प्रदेश को प्राप्त करने के योग्य अधिकारी विरक्त वैष्णव पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामजी के अनुग्रह दया से प्राप्त जो सुषुम्ना नाडी तादृश शताधिक शुभफल को देनेवाली सुषुम्ना नाडी के द्वारा इस पाँच भौतिक शरीर से निकल करके मुक्त के समान होता हुआ भगवान् के स्वरूप अर्थात् दिव्य अलौकिक स्वरूप का अनुभव से समुत्पन्न जायमान जो नित्य निरतिशय दुःखामिश्रित सुख तादृश प्राप्त सुख द्वारा संसार जनित सर्वपापों से विमुक्त छुटकारा प्राप्त करके तदनन्तर अर्चिरादिक मार्ग-अर्थात् देवयान उत्तर मार्ग को प्राप्त करते हैं। उत्तर मार्ग से एतादृश मुमुक्षु का गमन होता है। तथा तत्तत्मार्गाभिमानी देवताओं से वह साकेत प्राप्तीच्छा वाला पुरुष पूजित होता है। अर्थात् तत्तत् स्थान को प्राप्त किये पथिक का तत्र स्थित देवता लोग मिष्ट वचनों से स्वागत करके अग्रिम मार्गों का निर्देश भी करते हैं। तदनन्तर वह मोक्ष पथिक दिवस में जाता है। अर्थात् दिवसाभिमानी देवों के स्थान को प्राप्त करता है।

तथा तत्रत्य तदभिमानी देवों से सत्कृत पूजित होता है। तत्पश्चात् वह दिवसाभिमानी देवस्थान से प्रयाण करके शुक्लपक्ष का जो अभिमानी देव हैं उसको पाता है।६/७।

पक्षादुदङ्मासमथो षडात्मकं तेभ्यश्च सम्वत्सरमब्दतो रविम् ।
चन्द्रं ततश्चन्द्रमसोऽथ विद्युतं स तत्र तत्राखिलदेवपूजितः ॥८॥

इसके वाद मोक्ष पथिक जीव शुक्लपक्षाभिमानी देवताओं से पूजित होने के वाद उत्तरायण षड्मासाभिमानी देवस्थान को प्राप्त करते हैं। तव वहाँ भी तत्रत्य तत्स्थानाभिमानी देवों से पूजित होकर, तदनन्तर सम्वत्सराभिमानी देवस्थानों में जाते हैं। वहाँ भी उन देवों से पूजित सत्कृत होकर के तत्पश्चात् सूर्यलोक में जाते हैं। तथा सूर्यस्थ देवता से पूजित होकर चन्द्रलोक में पहूँचते हैं। वहाँ भी चन्द्रलोकाभिमानी देवताओं से पूजित सत्कृत होने के वाद विद्युत्लोक में जाते हैं। विद्युत्लोक में तदभिमानी देवों से पूजित-सत्कृत होते हैं ॥८॥

परं पदं सोऽयमुपेत्य नित्यममानवं ब्रह्मपथेन तेन ।
सायुज्यमेव प्रतिलभ्य तत्र प्राप्यस्य सन्नन्दति तेन साकम् ॥९॥

वह मुक्त पुरुष जो कि सुषुम्ना नाडी द्वारा इस पाँच भौतिक शरीर से निकला हुआ है। तथा पूर्वोक्त क्रम अर्चिरादि मार्ग से ब्रह्मपथ से परब्रह्म के लोक साकेत में पहुँचानेवाले मार्ग से गन्तव्य परम प्राप्य भगवान् श्रीसाकेतनाथ के सायुज्यरूप मोक्ष को प्राप्त हुआ है। वह साकेत नगर में भगवान् श्रीसीतानाथ के साथ नित्य निरतिशय अदृष्टाश्रुत विलक्षण सुख का भोग करता है ॥९॥

सीमान्तसिन्ध्वाप्लुत एव धन्यो गत्वा परब्रह्म सुवीक्षितोऽथ ।
प्राप्यं महानन्दमहाब्धिमग्नो नावर्त्तते जातु ततः पुनः सः ॥१०॥

सत्वरजस्तमो रूप प्रकृति तथा महतत्त्व से लेकर महापृथिव्यन्त जो प्रकृति मण्डल है उसके सीमान्त पर स्थित अर्थात् जहाँ प्रकृति मण्डल समाप्त होता है। तथा जिसके आगे मोक्ष प्रदेश श्रीसाकेत प्रारम्भ होता है इन दोनों के बीच में शास्त्रपुराणादि प्रसिद्ध विरजा नदी बह रही है। यह रजोगुण तथा तमोगुण के सम्बन्ध से सर्वथा अस्पृष्ट है शुद्ध सत्त्वमय ही है। इसलिए शास्त्रकारों ने इसका नाम विरजा रखा है। "विरजा" विगत रजोगुणवती प्रायः प्रत्येक नदी वर्षाकाल में सरजस्का हो जाती है इसलिए वर्षाकाल में स्नान तर्पणादिकों का गङ्गादि व्यतिरिक्त नदीयों में निषेध है।

यह तो गङ्गा से भी उत्कृष्ट होने से सर्वदा विरजा है। इस विरजा नदी के पूर्व किनारे में संसार है। उत्तर किनारे पर दिव्य साकेत धाम है तो मोक्ष धाम में जानेवाले मध्य में स्थित विरजा में स्नान करने के वाद ही प्राप्य श्रीरामजी का दर्शन करते हैं। इसलिए आचार्य श्री ने कहा है प्रकृति मण्डल के सीमान्त पर अवस्थित विरजा में समीचीन रूपसे अवगाहन करनेवाले परब्रह्म श्रीरामजी के अहेतुक कृपा कटाक्ष से दृष्ट होने के कारण जो धन्य हैं वे निरन्तर प्राप्त करने के योग्य भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को प्राप्त करके, अर्थात् साक्षात्कार करके नित्य निरतिशय आनन्दात्मक महासागर में निमग्न हो जाते हैं पुनः कभी भी उस स्थान से लौटकर इस मानव महावर्त में नहीं आते हैं। **"न स पुनरावर्तते" "आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन। मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते"** इत्यादिश्रुति स्मृतियों में ऐसा कहा है।

ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग छान्दोग्यादि श्रुतियों में बतलाया है कि **"तेर्चिषमभिसंविशन्ति अर्चिषोऽह अह्न आपूर्यमाणपक्षम् आपूर्यमाणपक्षाद् यान् षडुदङेतिमासान् मासेभ्यः संवत्सरं संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एतान् ब्रह्मगमयति एष देवपथोब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यमान इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते"** इति। तदयमर्थः सुषुम्ना नाडी के द्वारा पाँच भौतिक शरीर से बाहर निकलनेवाले महापुण्यशाली मानव शरीर से निकल करके अर्चिरभिमानी देव को प्राप्त करके वहाँ से चलकर दिवसाभिमानी देव को अर्थात् दिवस को प्राप्त होते हैं। तदनन्तर पक्षाभिमानी देव को प्राप्त करते हैं। तदनन्तर छः उत्तरायण मासों में प्रवेश करते हैं। तदनन्तर मास में मासाभिमानी देवों से चलकर सम्वत्सर में अर्थात् सम्वत्सराभिमानी देवों के लोक में जाते हैं। वहाँ देवों से यथायोग्य पूजित होकर तदनन्तर सम्वत्सर से आदित्यलोक में जाते हैं। आदित्यलोक में पूजित सत्कृत होकर के वहाँ से चन्द्रलोक में जाते हैं। चन्द्रलोक से भी प्रस्थान करके विद्युदभिमानी देवों के लोक में पुण्यात्मा जाते हैं वहाँ से आगे उनको एक अमानव पुरुष ब्रह्मलोक साकेत लोक में पहुँचाता है इसीका नाम देवपथ अर्थात् देवयान है। यह ब्रह्मपथ कहलाता है। अर्थात् ब्रह्म प्रापक मार्ग। इस मार्ग के द्वारा ब्रह्मलोक प्राप्त करनेवाले व्यक्ति कभी भी मानव आवर्त में लौटकर नहीं आता है। **"न स पुनरावर्तते"** ब्रह्मलोक को प्राप्त किया हुआ पुरुष पुनः वहाँ से लौटता नहीं। इस विषय का विशेष विवरण आनन्दभाष्य के अर्चिरादि प्रकरण तथा जगद्गुरु

श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी देशिकेन्द्र प्रणीत श्रीरामप्राप्तिपद्धति और महामहोपाध्याय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यजी प्रणीत गीतार्थचन्द्रिका के आठवें अध्याय में है अतः विशेषार्थि को वहीं देखना चाहिये निबन्धकाय वृद्धिभय से नाम निर्देश मात्र किया है, विशेष चर्चा वहीं करुँगा तत्तन्निबन्ध विवरण में ॥१०॥

श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे नवमः परिच्छेदः

॥ अथ श्रीवैष्णवनिवासस्थाननिरूपणम् ॥

महामते ? प्रोच्य तदीयमाप्यं तेषां निवासस्तु निरूप्यतेऽथ ।
मोक्षप्रदः शास्त्रसुसंमतश्च जिज्ञासुबोध्यो भव सावधानः ॥१॥

हे महामते विलक्षण बुद्धिशालिन् ? श्रीवैष्णवों से प्राप्त करने के योग्य परमकारण परमतत्व का निर्वचन करके तदनन्तर महात्माओं का निवास स्थान जो कि शास्त्र प्रमाण सिद्ध है तथा साक्षात् या परम्परा से मोक्ष प्राप्ति करने में सहकारी है। तथा जिज्ञासु व्यक्तियों से जानने के योग्य है। तादृश निवास स्थान का अव मैं निरूपण करता हूँ, तुम सावधान होकर के सुनो। स्थान का पूर्ण महत्व है वह मुक्ति प्राप्ति में अर्थात् विरक्तों को मोक्ष प्राप्ति में निवास स्थान सहायक होता है। अतः निवास स्थान का कथन करता हूँ। तुम स्थिर बुद्धि होकर के इन वातों को सुनो और समझो ॥१॥

अशेषतीर्थेषु वसेत् प्रपूजयन् स यत्र यात्राविरभूद् यथा यथा ।
तथा तथा तत्ररघूत्तमं जगत् पतिं चतुवर्गफलप्रदं हरिम् ॥२॥

सर्व भक्तों के दुःख जनक पापों को विनाश करनेवाले श्रीहरि शरणागतों के सर्व पापहारक श्रीरामजी जिन जिन तीर्थस्थानों में जिन जिन रूपों से भक्त के कार्य को सिद्ध करने के लिए आविर्भूत हुये हैं। अर्थात् यादृश कार्य विशेष को सम्पादन करने के लिए लीला विभूति में श्रीरामजी ने अवतार लिया है उन उन अशेष तीर्थों में रघुकूलोत्तम समस्त चराचर का पालक भक्त को स्वाभिमत धर्म अर्थ काम और मोक्ष पर्यन्त फल के प्रदाता सर्व पाप हारक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का प्रपत्ति निष्ठ होकर मनोवाक् काय से यथा मिलितोपचार से पूजन करते हुये उन तीर्थों में प्रपन्न श्रीवैष्णवगण यथा सुख यथा काल निवास करें। प्रत्येक तीर्थस्थान निवास करने योग्य है इसलिए श्रीवैष्णवगण अशेष तीर्थों में निवास करें ॥२॥

वैकुण्ठदेशे खलु वासुदेवमामोदसंज्ञे त्वथ कर्षणाह्वम् ।
प्रद्युग्नमब्जाक्षमपि प्रमोदे संमोद ईशन्तु तथाऽनिरुद्धम् ॥३॥

अशेष तीर्थस्थानों में विरक्त श्रीवैष्णव निवास करें इसप्रकार सामान्य रूपसे निवास स्थान का कथन्न किया गया है। उन्हीं तीर्थों का अव विशेष रूपसे तत्तत् नाम पूर्वक कथन करते हैं। अर्थात् कौन कौन देव किस किस तीर्थों में रहते हैं इस वात को बतलाने के लिए आचार्य श्री कहते हैं **"वैकुण्ठदेशे खलु वासुदेवम्"** इत्यादि । वैकुण्ठ देश में अर्थात् वैकुण्ठ नामक प्रदेश में मोक्ष की अभिलाषा रखनेवाले श्रीवैष्णवगण भगवान् श्रीवासुदेव का पूजन करते हुये जो भगवान् वासुदेव धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चतुर्वर्गात्मक फल को देनेवाले हैं उनका आराधना करते हुये निवास करें। एवं आमोद नामक तीर्थ विशेष में संकर्षण नामक देव का पूजन करते हुये जो कि सकल पुरुषार्थ का दायक हैं उनका पूजन आराधन करते हुये आमोद तीर्थ में निवास करें ।

एवं प्रमोद नामक तीर्थ में भगवान् कमल नयन प्रद्युम्नजी का निवास स्थान है तो मोक्षाभिलाषी भक्तगण इस तीर्थ में स्थित प्रद्युम्न भगवान् का पूजनाराधन करते हुये प्रमोद नामक तीर्थ में निवास करें। और संमोद नामक तीर्थ में सर्व समर्थ अर्थात् सवके ऊपर शासन करनेवाले भगवान् अनिरुद्धजी निवास करते हैं । तो मोक्ष कामनावान् भक्तलोग भगवान् श्रीअनिरुद्धजी का पूजन करते हुये संमोद तीर्थ में वास करें ॥३॥

विष्णुं तु लोके वरसत्यसंक्षके पद्माक्षमित्थं त्वथ सूर्यमण्डले ।
क्षीराब्धिमध्ये शुभशेषशायिनं श्वेते तथा द्वीपवरे च तारकम् ॥४॥

सत्यलोक नामक तीर्थ में भगवान् विष्णु रहते हैं उस सत्यलोक तीर्थ में भगवान् विष्णु का पूजन करते हुये श्रीवैष्णवगण निवास करें। एवं सूर्यमण्डल नामक तीर्थ में पद्माक्ष भगवान् विराजते हैं। उस क्षेत्र में पद्माक्ष की भक्ति करते हुये श्रीवैष्णवगण निवास करें एवं क्षीरसागर नामक तीर्थ में भगवान् श्रीशेषशायीजी रहते हैं उस क्षेत्र में निवास करते हुए महात्मागण शेषशायीजी का पूजनादिक करें। तथा श्वेतद्वीप नामक क्षेत्र में तारक भगवान् रहते हैं उनका पूजन करते हुए श्रीवैष्णव वहाँ निवास करें॥४॥

तथा बदर्याभिध आश्रमे वरे सुरर्षिराजर्षिमहर्षिसेविते ।
नारायणं लोकनमस्कृताङ्घ्रिकं मुनीशसेव्ये त्वथ नैमिषे हरिम् ।।५।।

जिस तरह श्वेतद्वीप में तारक भगवान् का पूजनादि करता हुआ निवास करें उसी तरह बदरी नामक आश्रम में देवर्षि राजर्षि महर्षियों से सेवित जो नारायण नामक भगवान् हैं उनका पूजनादिक करते हुये श्रीवैष्णवगण सर्वदा निवास करें। तथा नैमिष नामक क्षेत्र में जो कि मुनिश्रेष्ठ द्वारा सर्वदा सेव्य है उस तीर्थ में हरि नामक भगवान् का पूजनादिक करते हुए निवास करें ।।५।।

शालग्राममोघदिव्यफलदं देवं हरिक्षेत्रतोऽ-
योध्यायां रघुपुङ्गवं गुणनिधिं श्रीरामचन्द्रं प्रभुम् ।
सत्स्थाने मथुराभिधाश्रमवरे श्रीबालकृष्णं परम्
मायायां मधुसूदनं सुरनरध्येयाङ्घ्रिपद्मं सदा ।।६।।

हरिक्षेत्र में अर्थात् हरिक्षेत्र नामक तीर्थस्थान में अमोघ दिव्य फल को देनेवाले भगवान् शालग्रामजी निवास करते हैं। इस क्षेत्र में शालग्राम भगवान् का पूजनादिक करते हुए भक्त श्रीवैष्णव निवास करें। अयोध्या अर्थात् साकेत नामक तीर्थक्षेत्र में रघुकुल में श्रेष्ठ अनन्त कल्याण गुणों का समुद्र सर्व समर्थ श्रीसीतापति भगवान् श्रीरामचन्द्रजी निवास करते हैं। इस अयोध्या तीर्थ में भगवान् श्रीरामजी का अर्चन पूजन करते हुये श्रीवैष्णवलोग सर्वदा निवास करें। तथा साधु महात्माओं का समूहों से सेवित मथुरा नामक तीर्थ में रुक्मिणी सहित भगवान् श्रीबालकृष्ण निवास करते हैं। तो इस मथुरा तीर्थ क्षेत्र में भगवान् श्रीबालकृष्णजी का सेवन पूजन करते हुये निवास करें। तथा माया तीर्थ में अर्थात् हरिद्वार नामक गङ्गा तट पर विराजमान पुण्यतीर्थ है उसमें देवता मनुष्यों से ध्यान करने के योग्य चरणकमल वाले भगवान् श्रीमधुसूदन परमात्मा सदा निवास करते हैं। तो इसमें भगवान् श्रीमधुसूदनजी का अनुध्यान करते हुये निवास करें ६

काश्यां भोगिशयं सनातनमथावन्त्यामवन्तीपतिम्
श्रीमद्द्वारवतीति नाम्नि शुभदे श्रीयादवेन्द्रं मुदा ।

रम्ये श्रीव्रजनामके सुरनुतं गोपीजनानां प्रियम्
ब्रह्मेशादिकिरीटसेवितपदाम्भोजं भुजङ्गाश्रयम् ॥७॥

काशी-वाराणसी नामक क्षेत्र में सनातन भोगिशयन नामक भगवान् सदा निवास करते हैं उन भोगिशय का सेवन पूजन करते हुए काशी तीर्थ में निवास करें। तथा अवन्ती नामक पुण्यतीर्थ में अवन्तीपति भगवान् निवास करते हैं तो अवन्तीपति का पूजन करता हुआ अवन्ती तीर्थ में निवास करें। सर्व शोभा समन्वित कल्याण प्रद द्वारिका नामक तीर्थ में यादवेन्द्र भगवान् निवास करते हैं तो उनका सेवन करते हुए द्वारिका में निवास करें। अत्यन्त रमणीय व्रजनामक तीर्थ में गोपीजन प्रियनामक भगवान् रहते हैं वहाँ जो भगवान् हिरण्यगर्भादिक देव समुदायों से सेवित हैं तथा शेषासन हैं उनका सेवन पूजन करते हुए सन्तलोग निवास करें ॥७॥

वृन्दावने सुन्दरनन्दसुनुकं गोविन्दमेवं त्वथ कालियह्रदे ।
गोवर्धने गोपसूवेषधारिणं तथा भवघ्नेऽपि च पद्मलोचनम् ॥८॥

वृन्दावन नामवाला तीर्थ में जो आज भी वृन्दावन नाम से प्रसिद्ध है नन्द सुनु नाम से प्रसिद्ध (नन्द नाम के एक गोपश्रेष्ठ हुये। उनका पालित पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण कहलाते) भगवान् नन्दसुनु का उपासन करते हुए महात्मालोग निवास करें। और काली ह्रद नामक तीर्थ में जो कि वृन्दावन के समीप यमुना तटपर विराजित है उस तीर्थ में भगवान् सदा विराजते हैं अतः उस तीर्थक्षेत्र में भगवान् श्रीगोविन्दजी का भक्तिभाव करते हुए निवास करें। और गोवर्धन नामक पुण्यतीर्थ में गोपवेष को धारण करनेवाले गोपवेषधारी नामक भगवान् विराजते हैं अतः वहाँ गोपवेषधारी का पूजन करते हुए श्रीवैष्णवलोग इस तीर्थ में निवास करें। एवं संसार का विनाशक होने से भवघ्न भवनाशक नामक तीर्थ में भगवान् पद्मलोचनजी निवास करते हैं तो उनका पूजन करते हुए सुवैष्णव इस तीर्थ में निवास करें ॥८॥

शारिं तथा गोमत एव पर्वते तथा हरिद्वार ऋजुं जगत्पतिम् ।
तीर्थे प्रयागे वत माधवाभिधं तथा गयायां तु गदाधरं परम् ॥९॥

गोमत नामक पर्वत पर अर्थात् गोमत तीर्थ में शारि नामक भगवान् निवास

करते हैं, वहाँ भगवान् श्रीशारिजी का पूजनादिक करते हुए निवास करें। तथा हरिद्वार तीर्थ में सरल स्वभाव वाले भगवान् जगत्पतिजी रहते हैं। वहाँ भगवान् जगत्पति का पूजनादिक करते हुए श्रीवैष्णव निवास करें। और त्रिवेणी सङ्गम पर स्थित प्रयागराज तीर्थ में भगवान् वेणीमाधवजी निवास करते हैं। वहाँ श्रीमाधव भगवान् का पूजन करते हुए निवास करें। और मगधदेश में स्थित गया नामक तीर्थविशेष में जो कि पितरों का उद्धारक क्षेत्र है। उस गया तीर्थ में भगवान् गदाधर का निवास है। वहाँ गदाधर का पूजन में तत्पर श्रीवैष्णव निवास करें ॥९॥

गङ्गासागरसङ्गमेति शुभदे विष्णुं तथा राघवम्
शश्वद्भूरिगुणालये मुनिवृते श्रीचित्रकूटे विभुम् ।
नन्दिग्रामउदारकीर्तिनिकरे श्रीराक्षसघ्नं प्रभुम्
रम्ये श्रीमति विश्वरूपिणमथोक्षेत्रे प्रभासेऽमले ॥१०॥

गङ्गासागर तीर्थ में जो कि गङ्गा तथा पूर्व समुद्र का सङ्गम स्थान है में सकल ऐहिक पारलौकिक कल्याण को देनेवाले श्रीविष्णु तथा मननशील महात्माओं से सङ्कुलित सकल कल्याण गुणों का आधार चित्रकूट नामक पुण्यतीर्थ में श्रीराघवेन्द्र सरकार स्वयं विराजमान रहते हैं तथा उदार कीर्ति युक्त नन्दिग्राम तीर्थ में राक्षसघ्न नामक प्रभु विराजते हैं। और प्रभास नामक क्षेत्र में अतिसुन्दर श्रीविश्वरूपी भगवान् विराजमान रहते हैं। इन सभी तीर्थों में विराजमान उन उन भगवान् का पूजन करते हुए श्रीवैष्णवगण निवास करें ॥१०॥

श्रीकूर्माचल उत्तमे च सदयं कूर्मं सुरेशेडितम्
नीलाद्रौ पुरुषोत्तमं त्वथ महासिंहं च सिंहाचले ।
श्रीमन्तं तुलसीवने तु गदिनं सर्वार्थदं तत्प्रिये
क्षेत्रे श्रीकृतशौचके तु सततं पापापहं चेश्वरम् ॥११॥

कूर्माचल में परम दयावान् श्रीकूर्म भगवान् हैं। जो कि इन्द्रादि सकल देव तथा मनुष्य प्रभृतिकों से पूजित हैं तथा नीलाद्रि पर्वत नामक तीर्थ में श्रीपुरुषोत्तमजी विराजमान हैं। तथा सिंहाचल नामक पुण्यतीर्थ में श्रीमहासिंह भगवान् विराजित हैं।

तथा तुलसीवन नामक तीर्थ में श्रीगदी भगवान् रहते हैं। जो भक्तों का सकल मनोरथ को सिद्ध करनेवाले हैं। और "कृतशौचक" नामक तीर्थ में श्रीपापापह नामक भगवान् हैं। जो भक्तों के सकल पाप को विनष्ट कर देते हैं अतः उन उन क्षेत्रों में उन उन देवों का पूजन करते हुए निवास करें ॥११॥

श्वेताद्रौत्वथ सिंहरूपिणमथो श्रीधर्मपुर्यां तथा
योगानन्दमशेषदेवसुनतं श्रीकाकुले तु प्रभुम्।
देवैवन्द्यमथान्ध्रनायकमिह श्रीदं तथाऽहोबले
तस्मिन् श्रीगरुडादिसंज्ञ उचिते देवं हिरण्यार्दनम् ॥१२॥

श्रीश्वेताचल नामक तीर्थ में भगवान् श्रीसिंहरूपी निवास करते हैं। और श्रीधर्मपुरी नामक तीर्थ में श्रीयोगानन्द नामक भगवान् नित्य संनिहित रहते हैं। तथा श्रीकाकुल नामक तीर्थ विशेष में सर्व इन्द्रादिक देवों से सतत वन्दित आन्ध्र नायक भगवान् सर्वदा निवास करते हैं। एवं अहोबल नामसे लोकशास्त्र प्रसिद्ध श्रीगरुडाद्रि नामक पर्वत पर हिरण्यासुर का विनाशक भगवान् हिरण्यार्दनजी रहते हैं। इन उपर्युक्त तीर्थों में विद्यमान देवों की आराधना करते हुए मुमुक्षु विरक्त श्रीवैष्णव श्रद्धा विश्वासपूर्वक धर्मबुद्धि से निवास करें ॥१२॥

श्री विठ्ठलं तं किल पाण्डुरङ्गे श्रीवेङ्कटाद्रौ तु रमासखं च।
नारायणं श्रीमति यादवादौ नृसिंहमित्थं घटिकाऽचलेऽपि ॥१३॥

पाण्डुरङ्ग में अर्थात् पाण्डुरङ्ग नामक तीर्थ में भगवान् श्रीविठ्ठलेशजी रहते हैं। तथा वेंकट नामक पर्वत पर भगवान् श्रीनिवासजी रहते हैं। तथा सकल शोभा सम्पन्न यादवाद्रि यादव पर्वत पर श्रीनारायण भगवान् एवं घटिकाचल पर्वत पर भगवान् श्रीनृसिंहजी रहते हैं। इन सवका पूजनादिक करते हुए इन सव स्थानों में निवास करें ।१३।

सुरेन्द्रवन्द्यं वरदं त्वहर्दिवं सुनिर्मले श्रीशुभवारणाचले।
काञ्च्यां तथा श्रीकमलायताक्ष्यं समर्चनीयं बुधवैष्णवोत्तमैः ॥१४॥

सर्व पापात्मक दोष से रहित होने के कारण अति निर्मल तथा सर्व प्रकार शोभा

से युक्त श्रीवारण नामक पर्वत पर इन्द्रादि सकल देवों से पूजित वरद नामक भगवान् निवास करते हैं। तथा काञ्चीपुर में अर्थात् काञ्ची नामसे लोक में प्रसिद्ध नगर में विद्वान् वैष्णवों से पूजा करने के योग्य विकसित कमल के समान नेत्रवाले कमलनयन नामक भगवान् निवास करते हैं। इन सव क्षेत्रों में उपर्युक्त भगवान् का पूजन सेवन करते हुए श्रीवैष्णवलोग निवास करें ॥१४॥

तोताद्रिसंज्ञादिषु वैष्णवोत्तमैरेवं तथा तुङ्गशयादिकं प्रभुम् ।
कार्यो निवासो नितरां शुभार्थिभिराराधयद्भिः सकलार्थदायिनम् ।१५।

एवं पूर्वोक्त क्रम से तोतादि क्षेत्र में स्थित सर्वार्थप्रद तुङ्गशायी भगवान् की आराधना करते हुए शुभेच्छु उत्तम श्रीवैष्णवों को सन्नियतचित होकर उस पुण्यक्षेत्र में निवास करना चाहिये श्लोक स्थित आदि शब्द से अन्य तीर्थों का संग्रह होता है वे अन्य साम्प्रदायिक दिव्य प्रबन्धों से जान लेना चाहिए। विस्तारभय से संग्रह नहीं कर रहें हैं ॥१५॥

श्रीवैष्णवमताब्जभस्करे दशमपच्छिेदः

॥ ग्रन्थफलश्रुतिः ॥

सदानुसन्ध्येयमिमं त्रिकालं मुमुक्षुभिस्तत्परमार्थमित्थम् ।
ज्ञात्वा नचैवास्ति सुवेदनियं जिज्ञासुभिस्तैरवशिष्यमाणम् ॥१॥

पूर्वोक्त क्रम से दशों प्रश्नों के उत्तर देने के वाद आचार्य प्रवर फल श्रुति का उपदेश करते हैं-

"सदानुसन्धेयम्" इत्यादि चार श्लोकों से। सर्वशास्त्रसार रूपसे समुपदिष्ट इस दिव्य प्रबन्ध का मुमुक्षुओं को त्रिकाल अनुसन्धान करना चाहिए तत्त्व ज्ञान प्रास करने के लिये। क्योंकि इसमें प्रतिपादित तत्त्वों को जानने के वाद जानने योग्य संसार में कुछ भी नहीं रहेगा ॥१॥

गुरुद्रुहे नो न सठाय चेदं न नास्तिकायोपदिशेत् कदाचित् ।
नावैष्णवायापि रहस्यमेतन्न चाथ दैन्याहतवेदनाय ॥२॥

इस परम रहस्यभूत दिव्यादेश को गुरुद्रोही शठ नास्तिक मन्द बुद्धि तथा

विधिपूर्वक सदाचार्य श्रीवैष्णव से जिन्होंने दीक्षा न लीया हो उन्हें कभी भी उपदेश न करें "**विष्णु दीक्षा विहीनानां नाधिकारकथाश्रवे**" ऐसा श्रीसम्प्रदाय (श्रीरामानन्द सम्प्रदाय) के सातवें आचार्य भगवान् बादरायण व्यासजी ने कहा है, अतः अदीक्षितों को उपदेश फलप्रद नहीं होता है। इसलिये मुमुक्षुओं को सदाचार्य श्रीवैष्णव से सविधि दीक्षा लेकर सदुपदेश श्रवण तथा आचरण द्वारा परमपद का भागी बनना चाहिये ॥२॥

जितेन्द्रियः प्रपन्नः सन् बुधः श्रीजानकीपतिम् ।
अनुष्ठाय मतं चेदं परमं स्थानमाप्नुयात् ॥३॥

श्रीसीतारामजी के शरणापन्न जितेन्द्रिय होकर इस उत्तम श्रीवैष्णवमत का अनुसरण कहने से मनुष्य परमपद श्रीसाकेताख्य दिव्य धाम को प्राप्तकर लेगा अर्थात् मुक्त होगा ॥३॥

रामानन्दप्रोक्तः श्रीवैष्णवमताब्जभास्करो भवतु ।
आनन्दभाष्यसोदर एषोऽन्तस्तमो विनाशाय ॥४॥

यह प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यों के उपदेश के वाद जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी यतिसम्राट् के द्वारा जगद्गुरु श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी को उपदिष्ट श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर नामक श्रीवैष्णवों का सर्वस्वभूत दिव्यप्रबन्ध अध्ययन-अनुशीलन करनेवालों के हृदय स्थित अन्धकारों को दूर करनेवाला अर्थात् सायुज्य मुक्ति देनेवाला हो ॥४॥

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्रसच्छिष्य

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यकृत

卐 श्रीवैष्णवमताब्जभास्करकिरणः समाप्तः 卐

शास्त्ररत्नाकरश्चासौ जिज्ञासुमुक्तिदायकः ।
किरणटीकयायुक्तो भूयाच्छ्रीरामतुष्टये ॥

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

卐 श्रीरामार्पणमस्तु 卐